सविता सिंह की कविताओं का आलोचनात्मक अध्ययन

SAVITA SINGH KI KAVITAON KA AALOCHNATMAK ADDHYAYAN

[A CRITICAL STUDY OF SAVITA SINGH'S POETRY]

एम. फिल. (हिंदी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. गोबिन्द प्रसाद

शोधार्थी
मनीषा

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

2012

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature & Culture Studies
New Delhi-110067, India

Date : /07/2012

DECLARATION

I declare that the work done in this Dissertation "SAVITA SINGH KI KAVITAON KA AALOCHNATMAK ADDHYAYAN [A CRITICAL STUDY OF SAVITA SINGH'S POETRY]" by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Manisha
(Research Scholar)

Dr. Gobind Prasad
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. RAM BUX JAT
(CHAIRPERSON)
CIL/SLL&CS/JNU

समर्पण

माँ जो अपनी 'माँ' को न देख सकी
पिता जो जीवन भर संघर्षरत रहे...

अनुक्रमणिका

	पृ. सं.
भूमिका	i-iii
प्रथम अध्याय – समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य	1-23
द्वितीय अध्याय – समकालीन हिंदी कविता में स्त्री –स्वर	24-42
तृतीय अध्याय – सविता सिंह : काव्य संवेदना का स्वरूप	43-69
चतुर्थ अध्याय – सविता सिंह : संवेदना का भाषिक विधान	70-94
उपसंहार	95-98
संदर्भ-ग्रंथ-सूची	99-103
आधार ग्रंथ	
सहायक ग्रंथ	
सहायक पत्र एवं पत्रिकाएं	

भूमिका

विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय भारतेन्दु हरिशचंद्र, श्रीधर पाठक, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर, धूमिल आदि कवियों एवं कवयित्रियों की कविताओं को पढ़ा। और जब आज की कविताओं का अध्ययन किया, तब यह तथ्य उभरकर सामने आया कि किस प्रकार से पहले की कविताएं आज के जीवन से मेल नहीं खाती।

सन् 1975 से पूर्व की कविताओं में एवं सन् 1975 के पश्चात् की कविताओं में पर्याप्त भिन्नता है। इसी भिन्नता को लेकर मन में जिज्ञासा का भाव उमड़ा। तत्पश्चात समकालीन कवियों की कविताओं का अध्ययन किया, वहीं इस दौर में समकालीन कवयित्रियां जो कविताएं लिख रही हैं, उसमें स्त्री लेखन से संबंधित कविताओं का गइराई से अध्ययन किया और जानना चाहा कि इन कविताओं में इतनी पीड़ा, इतनी वितृष्णा क्यों भरी पड़ी है। स्त्री–पुरुष संबंधी जो प्रश्न हैं, वो भीतर ही भीतर कौंधने लगे। भारतीय समाज में जो स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–शिक्षा, स्त्री–देह, स्त्री–स्वायत्तता आदि के जो सवाल हैं, उन सवालों को कविता के स्तर पर गहराई से अध्ययन के लिए चुनाव किया।

यूं तो समकालीन कविता में स्त्री विमर्श पर बहुत काम हो रहा है। लेकिन स्त्री समस्याओं को अलग–अलग कवयित्रियों (निर्मला गर्ग, सुनीता जैन, इन्दु जैन, अनामिका, कात्यायनी, सविता, नीलेश रघुवंशी आदि) ने अपने भिन्न अनुभव, अलग विचार द्वारा प्रेषित किया है। इनमें से सविता सिंह कुछ अलगपन लिये हुए हैं। सविता सिंह स्त्री–विमर्श से तो जुड़ी हैं लेकिन उनका भाषा–शिल्प समकालीनों से अलग है। उनका जो अनुभव है वो अन्य रचनाकारों से अलग है।

स्त्री विषयक कविता पर काम करने का बड़ा कारण मेरा घरेलू परिवेश रहा है। बचपन में मां द्वारा गाई गई पंक्तियों से और कविता से आरंभिक प्रेम रहा है। इसलिए इस प्रकार का ही मैंने विषय चुना। जिस पर मेरे शोध निर्देशक डॉ. गोबिन्द प्रसाद ने भी स्वीकृति प्रदान कर दी।

सविता सिंह की भाव–व्यंजना स्पष्ट रूप से उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। अपनी कविताओं में वे स्त्री समस्याओं की जड़ तक गई है। इनकी कविताओं में अभिव्यक्त स्त्री–पक्षों पर दृष्टिपात करने का यह मेरा आरंभिक प्रयास है। इस कार्य में मेरे गुरुजी डॉ. गोबिन्द प्रसाद ने समय–समय पर सहायता की। जिसके लिए मैं सदैव उनकी कृतज्ञ रहूंगी...।

सविता सिंह की कविताओं के अध्ययन के लिए मैंने अपने शोध–कार्य को चार अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य है। जिसमें मैंने छायावाद से लेकर समकालीन कविता तक की काव्य परंपरा को संक्षेप में बताने का प्रयास किया है तथा समकालीन कवियों की समकालीन कविता के बारे में जो आधारभूत मान्यताएं हैं उन पर प्रकाश डालते हुए कवियों की कविताओं का विश्लेषण किया है। इसमें कवियों का विविध आयामी स्वर प्रस्फुटित हुआ है।

द्वितीय अध्याय में मैंने समकालीन हिंदी कविता में जो स्त्री–स्वर है उस पर प्रकाश डाला है। कवयित्रियों द्वारा लिखित जो कविताएं हैं उनमें किस प्रकार का स्त्री स्वर विद्यमान है। इस स्वर को उनकी कविताओं द्वारा बताने का प्रयास किया गया है। समाज में स्त्री के जो मूलभूत प्रश्न हैं यथा– स्त्री–मुक्ति का प्रश्न, देह का प्रश्न, बराबर की भागीदारी का प्रश्न, पुरुष वर्चस्वता से मुक्ति का प्रश्न आदि प्रश्नों को लेकर इस अध्याय में बात की गई है।

तृतीय अध्याय है सविता सिंह : काव्य संवेदना का स्वरूप। इस अध्याय में सविता सिंह की काव्यानुभूति तथा उनकी स्त्री–समस्यापरक दृष्टि को रेखांकित किया गया है। तथा प्रकृतिपरक और प्रेमपरक कविताओं में जो उनकी दृष्टि है, उसका आलोचनात्मक अध्ययन किया है।

चतुर्थ अध्याय में सविता सिंह के भाषिक विधान पर बात की गई है। कवयित्री द्वारा जो भाषिक प्रयोग हुए हैं, उसको दिखाने की कोशिश की है। सविता सिंह ने जिस नयेपन के साथ अपने काव्य में बिंब, प्रतीक, शब्द प्रयोग, वाक्य संरचना, आदि का प्रयोग किया है इसको प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

इस लघु शोध–प्रबंध को लिखने से पूर्व मेरे पास कुछ महत्त्वपूर्ण सहायक सामग्री का अभाव था, जिसे बहुमुखी प्रतिभा की धनी सविता सिंह ने मुझे स्वयं उपलब्ध कराया। जिसके लिए मैं जीवन भर उनकी आभारी रहूँगी....।

गुरुवर डॉ. गोबिन्द प्रसाद जिनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान से मेरे वैचारिक स्तर में वृद्धि हुई, तथा समय–समय पर जिनका मार्गदर्शन मुझे मिलता रहा, के लिए धन्यवाद शब्द छोटा प्रतीत होता है, उनके लिए कुछ भी कहना अपर्याप्त होगा।

इस शोध कार्य को पूरा करने में मेरे अभिन्न मित्र प्रेमपाल जिसने मेरे आत्मविश्वास में वृद्धि की तथा सुखात्मक–दुखात्मक क्षणों में साथ दिया, का हृदय से आभार...!

अशोक (टंकक), भावना, रूबीना, दीपशिखा, अनिरुद्ध का भी धन्यवाद जिन्होंने मेरे शोध–कार्य के लिए अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

भईया–भाभी, दीदी–जीजा जी, चीकू, हरियाणा, चीनी, हेमू, खुटकु, केशू, यशू एवं लव जिनकी उम्मीद और स्नेह के कारण मैं यहां तक पहुंची।

मां–पिताजी जिनसे मेरा अस्तित्व है, उनके लिए कुछ भी कहना सूरज को दिया दिखाना है।

दिनांक : /07/2012 मनीषा

प्रथम अध्याय

समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य

समकालीन हिंदी कविता एक व्यापक फलक पर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की कविता है। अन्य शब्दों में बीसवीं शती के अंतिम दशक और उससे आगे की कविता है। यह वह दौर है जिसमें उपभोक्तावादी संस्कृति तन और मन दोनों पर हावी है। बाजार लोगों के घर में घुस आया है और सूचना क्रांति का चारों ओर बोल–बाला है। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक पत्र–पत्रिकाएं देश–दुनिया की नई खबरों से लोगों को चमत्कृत कर देने के लिए प्रत्येक क्षण तैयार रहती है। समाचार चैनल रोज दुनिया बदल देने जैसी सनसनीखेज खबरों से भरे रहते हैं और इसके विपरीत आतंकवाद के साथ में चलता जीवन सुबह और शाम के अन्तर्द्वन्द्व में दिन काट रहा है। ऐसे समय में समकालीन कविता बाजार की चकाचौंध में खोई हुई मानवीय संवेदना की खोज कर रही है।

जहां तक समकालीन कविता की पृष्ठभूमि का प्रश्न है तो सर्वप्रथम हम कविता के विभिन्न दौर से गुजरते हुए समकालीन कविता तक पहुंचेंगे। कुछ विद्वान मानते हैं कि छायावाद के अंत में ही समकालीन कविता के लक्षण दिखाई देने लग जाते हैं।

ये बात ठीक है कि निराला छायावादी कवियों में एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनकी कविताएं छायावादांत में सर्वप्रथम किसान, मजदूर, भिखारी आदि की बाँह पकड़ती है। कुकुरमुत्ता में उन्होंने लिखा है–

"और अपने से उगा मैं

बिना दाने का चुगा मैं

कलम मेरा नहीं लगता

मेरा जीवन आप जगता

"हिन्दी कविता में पहली बार सर्वहारा के आत्मविश्वास के स्वर की अनुगूँज और विशिष्ट बुनावट के कारण, यह कविता समकालीन यथार्थ के निकट अपना स्थान ग्रहण करती है।"[1]

परंतु छायावाद के अंत से हम समकालीन कविता की शुरूआत नहीं मान सकते।

भाषा को साधारण बोल–चाली गद्य के निकट लाने का जो कार्य उन्होंने किया उसी को आगे चलकर भवानीप्रसाद मिश्र ने दुहराया। यथा – 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।'[2]

प्रगतिवादी युग में आकर यह सपाटबयानी और मुखर हो उठती है। इस युग ने नागार्जुन जैसे कवि को जन्म दिया जो अपने गांव, वहां के लोगों, पगडंडियों, खेतों को काव्य का आधार बनाता है। नागार्जुन का साथ देने के लिए केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन भी मौजूद थे।

प्रगतिवादी ब्रिटिशिश से मिली स्वतंत्रता को तब तक सही नहीं मानते जब तक यह सामाजिक रूप से भी न मिली हो। अपनी 'दधिची निराला' शीर्षक कविता में नागार्जुन इस आज़ादी का रहस्योद्घाटन करते हैं –

"लोग दुखी है अन्न वस्त्र का है न ठिकाना

लाल किले से टकराता है नया तराना

नए हिंद का नया ढंग है नीति निराली

मुट्ठी भर लोगों के चेहरे पर है लाली"[3]

इसी पकार केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविता में मज़दूर वर्ग की दयनीय दशा का चित्रण करते हैं –

"हमारी जिंदगी के दिन

बड़े संघर्ष के दिन हैं

हमेशा काम करते हैं

मगर कम दाम मिलते हैं।"[4]

प्रगतिवाद के सम्मुख मुख्य चुनौती, मन, वचन और कर्म की एकसूत्रता को लेकर थी। चालीस के दशक में प्रगतिवादी आंदोलन अपने पथ से भटक गया और केवल कपोल क्रांति का डंका बजाता रहा। वह मनुष्य जीवन के केवल राजनीतिक सामाजिक पक्ष को ही उजागर करता रहा और स्वयं उसका एक हिस्सा बनकर रह गया। पाँचवे दशक की प्रगतिवादी कविता का कलात्मक पक्ष बहुत कमजोर पड़ गया और दूसरे सज्ज़ाद ज़हीर जो कि प्रगतिशील आंदोलन के शिल्पकार थे, पाकिस्तान चले गये। ऐसे मे प्रगतिशीलता के मार्ग पर आगे बढ़ना एक दुर्लभ कार्य हो गया। ऊपर से तत्कालीन चुनावों से सत्ता में आई कांग्रेस ने कम्युनिष्टों के प्रति विरोध का स्वर ऊँचा किया क्योंकि पीछे गांधी जी के भारत छोड़ो आंदोलन का उन्होंने विरोध किया था और कहा कि भारत अब भी साम्राज्यवादी शक्तियों का गुलाम बना हुआ है, जो कि तत्कालीन जनता को बेहद नागवार गुजरी।

उक्त परिस्थितियों ने कविता की दशा और दिशा को संकट में ला दिया और एक नए प्रकार, नए भावबोध तथा नवीन अस्मिता से भरी कविता की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। इसी समय अज्ञेय सन् 1943 ई. में 'तारसप्तक' लेकर आते हैं जो हिंदी कविता में प्रयोगवाद को लेकर आया।

अज्ञेय इस दौर के नायक कवि हैं। उन्होंने इतिहास को क्षण में समेट लेने और क्षण को इतिहास व्यापी बना लेने की इच्छा को रूप देने का प्रयास किया। प्रयोगवाद की कविता में हमें व्यक्ति की आवाज़ अधिक सुनाई पड़ती है और समाज की कम।

स्वयं अज्ञेय का प्रयोगवाद के संदर्भ में कहना है – "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी

नहीं छुआ गया था जिनको अभेध मान लिया गया है।"[5] यहां यह स्पष्ट है कि अज्ञेय नित नवीन प्रयोगों की ओर संकेत कर रहे हैं।

अज्ञेययुगीन कवियों ने कई बार अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर सामाजिक नग्नता को भी प्रयोगशाला का विषय बना डाला था। वे अपनी कामुक आकांक्षाओं पर नियंत्रण नहीं रख पा रहे थे और जीवन के अंधकारमय चिथड़े को उसी रूप में रख देना चाहते थे जिस तरह अखबारों के मेट्रिमोनियल्स में कोई वर या वधु खोजने के लिए सूचना भेजे और उसके रंग–रूप की संपूर्ण जानकारी दे। उदाहरणार्थ अनन्त कुमार पाषाण की एक कविता का अंश देखिए –

"मेरे मन की अंध्यारी कोठरी में

अतृप्त आकांक्षाओं की वेश्या बुरी तरह खांस रही है।"[6]

शकुंत माथुर की 'सुहास वेला' का भी एक काव्यांश दृष्टव्य है –

"चली आई बेला सुहागिन पायल पहने

बाण बिद्ध हरिणी सी

बाहों में सिमट जाने की

उलझने की, लिपटन जाने की।"[7]

प्रयोगवाद की इसी रुग्न मानसिकता ने कविता में अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद, अतिनग्न यथार्थवाद, घौर निराशा और अति–बौद्धिकतावाद को जन्म दिया। हिंदी आलोचना जगत में प्रयोग की इस अतिशयता को कई बौद्धिक कलमों का कोपभाजन बनना पड़ा। यहां तक कि स्वयं अज्ञेय को अपनी मान्यताओं का पुनर्परीक्षण करना पड़ा। बाद में अपनी बदली हुई दृष्टि और मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में 'दूसरा सप्तक' की कविताओं को उन्होंने नई कविता कहकर पुकारा।

यहां एक बात गौर करने योग्य है और वह यह कि नई कविता में ऐसा नया क्या था जो उसे दूसरी कविताओं से पृथक करता है। आखिर 'नया' विशेषण का क्या

अर्थ है ? कविता के साथ लगकर यह विशेषण कौन सी नई बात पैदा कर देता है। इसका उत्तर हमें एक शब्द या वाक्य में नहीं मिल सकता। वास्तव में नई कविता में नयापन परिवेश की भिन्नता के कारण आया। अतीत मोह छायावाद का बहुत प्रिय विषय रहा किन्तु नई कविता उसे पीछे छोड़ देती है। देश में अभी–अभी समाप्त हुए स्वंतत्रता संघर्ष से भी उसे कोई सरोकार नहीं है। वह आज़ादी का जश्न बहुत दिनों तक नहीं बनाती और तुरंत उसका मोहभंग हो जाता है। आखिर! ऐसा क्यों होताहै।

यह वह समय है जब विभाजन की त्रासदी से पीड़ित लोग भारत–पाकिस्तान में बँट गए हैं वे अपने घर से बेघर हो गए हैं। उन्हें अपनी सुरक्षा, अस्तित्व और अस्मिता का संकट साफ तौर पर नज़र आ रहा है। बेरोजगारी, भुखमरी की समस्या के कारण लोगों ने शहर की ओर पलायन शुरू कर दिया है। जहां वे अजनबीपन, अकेलेपन, संत्रास, टूटन और परिवेश से उपजे विक्षोभ से त्रस्त हैं। यही पर नई कविता उनका हाथ थामती है और उनकी भाषा में बात करती हैं। उसको पुराने मूल्यों के विघटन का कोई अफसोस नहीं है। इसका भावबोध यथार्थवादी नहीं रुमानी है।

विज्ञान के अविष्कारों ने मनुष्यों को विस्थापित करना आरंभ ही नहीं किया अपितु उसे यंत्रवत् बनने के लिए विवश कर दिया। फलतः मनुष्य स्वयं को अकेला महसूस करने लगा। आम आदमी को आजादी से जो आशाएं थीं वे आशाएं मात्र ही रह गईं। साहित्य और राजनीति का फ़ासला दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। राजनीति राष्ट्र को छोड़कर केवल सत्ता पक्ष का अंग बनकर रह गई। विभाजन, हत्या और बलात्कार का घृणित नृत्य, पूँजीपतियों की लूट खसोट, भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियों का फूलता पेट और बड़ी होती तिजोरियां, योजनाओं की निरंतर असफलता, अस्मिता की लड़ाई का तीव्र होना आदि परिस्थितियों ने मोहभंग को जन्म दिया। युवा वर्ग में इसकी प्रतिक्रिया भयंकर रूप में हुई। वे निराशा और क्रोध से भर उठे और सामाजिकता तथा परंपरावादिता के विरुद्ध उच्छृंखल और लक्ष्यहीन विद्रोह करना प्रारंभ कर दिया। इसका भी परिणाम यह हुआ कि अनुशासनहीनता, हीनभावना, अनास्था, स्वार्थपरता, फैशनपरस्ती और घोर वैयक्तिकता ने उनके भीतर घर कर लिया और इस प्रकार वे

लक्ष्यहीन मार्ग पर चल पड़े। नई कविता इस युग की आवाज बनी, लेकिन उसका स्वर नए जीवन आदर्शों, नए युग बोध जीवन मूल्यों, नई संस्कृति और शोषण विहीन समाज से भरा हुआ था। ऐसे में नई कविता का 'नया' विशेषण उचित ही है।

नई कविता ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती। इसलिए हम देखते हैं कि कुचक्रं की नीति रचने पर गीतिनाट्य अंधायुग के कृष्ण को भी शापित होना पड़ता है और जिसकी परिणति भगवान की मृत्यु रूप में होती है। नई कविता ने भगवान को मृत घोषित कर दिया।

सन् साठ के आसपास ही मुक्तिबोध जैसा कवि नई कविता के आकाश में दीप्तमान होता है जो व्यक्ति स्वातंत्र्य को एक दूसरी दृष्टि से देख रहा था। वे कवियों की नपी–तुली भाषा के विरुद्ध अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाना चाहते हैं। उनकी बेचैनी पूँजीवादी समाज के व्यक्ति विभाजन की समस्या को लेकर थी। यहां उनकी कविता सुगढ़ता, संयम और परिष्कार के प्रचलित काव्यमानों को तोड़कर केन्द्र में आती है। और घनघोर अंधकार, वीरानों सी भयावहता तथा खाइयों की गहराई से हमारा परिचय कराती है। परिणामस्वरूप सन् साठ के बाद रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा का स्वर हमें बदला हुआ नज़र आता है। नेहरू की नीतियों के बदल जाने और देश के पूँजीपतियों की भाषा में बात करने की तिलमिलाहट उनकी कविताओं में स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है।

नई कविता जब सातवें दशक में प्रवेश करती है तो एकाएक उनका स्वर सामाजिक क्षेत्र में शिक्षा और सामाजिक प्रशिक्षण के बीच कथनी और करनी में अन्तर को लेकर फूट पड़ता है। और इसको नाम मिलता है 'अकविता'। वास्तव में झुंझलाती हुई यह अकविता साम्यवाद का ही एक अंश है जो आर्थिक, सांस्कृतिक और सृजनात्मकता के क्षेत्र में जान–बूझकर बनाए गए रिक्त स्थानों को भरने का एक विरोधी और आक्रामक प्रयास था। उसमें ऊब, अकेलेपन, कुंठा, अवमानना, झुंझलाहट और क्रोध की अभिव्यक्ति साहित्य को शुद्धतावाद के घेरे से बाहर निकालकर दैनंदिन जीवन में व्याप्त अनैतिकता, अव्यवस्था, विघटन और रोजमर्रा के तनाव में फँसा देना

चाहती थी। यह कविता जीवन के थूक, बलगम, पीप, वेश्यावृत्ति को साहित्य पर लाद देना चाहती थी इसलिए सृजना के क्षेत्र में स्वीकृत नहीं हो पाई और जल्द ही इसका दम घुट गया।

सातवें दशक का उत्तरार्द्ध गहरे आर्थिक संकट से घिरा हुआ था। विदेशों पर निर्भरता बढ़ती जा रही थी और भारी मात्रा में खाद्यान्न एवं अन्य वस्तुओं का आयात किया जा रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि आम जनता की हताशा बढ़ती गई और सन् 1967 में नक्सलवाड़ी में सशस्त्र किसान विद्रोह फूट पड़ा। इस आंदोलन से धूमिल, लीलाधर जगूड़ी और आलोकधन्वा जैसे कवियों की नई पीढ़ी का जन्म हुआ। पाँचवे दशक की प्रगतिशील कविता के धागे इस दौर की कविता से पुनः जुड़ने लगे।

सन् पचहत्तर तक आते–आते आपातकाल लग जाता है। आम जनमानस में गुस्सा फूट पड़ता है और साहित्य में नागार्जुन एक बार फिर प्रासंगिक हो उठते हैं। वे इंदिरा गांधी के अत्याचारों का खुलकर विरोध करते हैं और लोकगीतों, धुनों, कथाओं को आधार बनाकर 'अकाल और उसके बाद', 'तीन दिन तीन रात', 'चार पूत भारत माता के', जैसी कविताएं रचते हैं। आपातकाल का यही दौर समकालीन कविता को जन्म देता है। सन् (1980) से हम समकालीन कविता का प्रादुर्भाव मान सके हैं।

सन् 80 की कविता पर संकट, संत्रास का कोई प्रभाव नहीं है। कस्बे का आदमी जा चुका है। आपातकाल का समय बीत चुका है, फिर भी छुटपुट कविताएं तब भी लिखी जा रही हैं। सन् 50 में जो लोग आए थे वे स्थापित हो चुके हैं। आपातकाल से इस कविता का कोई लेना देना नहीं हैं समकालीन कविता में नई कविता का तीखापन समाप्त होता है। यहां कुंठा नहीं है बल्कि प्रेम और प्रेम में होनेवाला दर्द है। रोजगार की समस्या है। यहां अकवितावादियों की अपेक्षा विषय वस्तु की ओर अधिक झुकाव है।

वास्तव में समकालीन कविता का आग्रहशील बिन्दु प्रगतिशीलता से प्रभावित है। शमशेर, मुक्तिबोध, अज्ञेय की आरंभिक कविता प्रगतिवाद से प्रभावित थीं किंतु तार सप्तक के बाद बदल गई। इसी के समान्तर नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन की धारा बहती है, यही कवि समकालीन कविता के प्रेरणास्रोत हैं। समकालीन कविता, कविता में

अभिव्यक्त हो रही है विचारों में नहीं ठीक उसी प्रकार जैसे शमशेर के विचार और वस्तु को देखने की उनकी दृष्टि में भेद है। मंगलेश डबराल, उदयप्रकाश, राजेश जोशी, अरुण कमल आदि समकालीन कविता के महत्तवपूर्ण कवि है। इनकी कविताओं में अकेलेपन, घुटन का शमन दिखाई पड़ता है। परंपरा का निषेध है। आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग है।

कुछ विद्वानों ने समकालीन कविता के संदर्भ में अपने मत प्रकट किये हैं। यथा –

अजय तिवारी के अनुसार – "आज कल जिसे समकालीन कविता कहा जाता है, वह मोटे तौर पर 1970 के बाद लिखी गई कविता है।"[8]

राजेश जोशी के अनुसार – "आठवें दशक की कविता ने एक बार पुनः उस कविता को संभव बनाया है जिसमें जीवन के सभी राग–रंग मौजूद हैं। यह कविता में जीवन के पुनर्वास की कविता है।"[9]

डॉ. राघव प्रकाश के अनुसार – "समकालीन कविता स्थितियों, तथ्यों, दृश्यों और घटनाओं की कविता है किन्तु इनके आगे भी, और पीछे भी, विचार ही जुड़ा है। और यह विचार बहुत बार सतह पर आ जाता है तथा फिर डुबकी लगा जाता है।"[10]

डॉ. शंभुनाथ के अनुसार – "समकालीन कविता जीवन के सौंदर्य और संघर्ष की कविता है।"[11]

परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार – "'समकालीन कविता' कहते ही हमारे समय के महत्त्वपूर्ण सरोकारों, सवालों से टकराती एक विशेष रूप और गुणधर्म वाली कविता का चित्र सामने आ जाता है।"[12]

ए. अरविन्दाक्षण के अनुसार – "समकालीन कविता वंस्तुतः कविता की सहज परिणति है। वह आंदोलन के तहत या सिद्धांतों के अनुरूप विकसित होने वाली कविता नहीं है"[13]

विनय विश्वास के अनुसार – "समकालीन का अर्थ वर्तमान में सृजित कविताओं से कम, और वर्तमान के लिए सृजित कविताओं से ज़्यादा लिया है। इस समझ के तहत कि कविता अपने रचनाकाल का अतिक्रमण करती है। अतीत को नई निगाह से देखना सिखाती है। जीवन में नए जीवन की गुंजाइश पैदा करती है। इस तरह भविष्य का रूप गढ़ती है। त्रिकालव्यापी होता है उसका प्रभाव। वर्तमान के लिए अगर कबीर–तुलसी की कविता भी प्रासंगिक है तो समकालीन है और नहीं है तो कोई आज लिखी जा रही कविता भी नहीं।"[14]

समकालीन कविता के परिदृश्य को समझने के लिए उसका सूक्ष्म विश्लेषण करना आवश्यक है। समकालीन कविता का कवि वर्तमान समय में घट रही घटनाओं से जूझ रहा है, हर उस व्यवस्था का विरोध कर रहा है जो उस पर थोपी गई है। वह मंदिर मस्जिद में नहीं अपितु एक घर की चाह रखता है लीलाधर जगूड़ी एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इस समय को 'गुंडा' नाम से अभिहित किया है तथा अपनी कविता 'गुंडा समय' में वे लिखते हैं–

"...सारी व्यवस्थाओं का भरोसा छीनकर

इस गुंडा समय में

न मंदिर में रहना चाहता हूं न मस्जिद में

मैं एक रहने योग्य घर में रहते हुए

कहने योग्य बात कहना चाहता हूं

कि मैं धार्मिक नहीं एक मार्मिक संबंध हूं"[15]

आज समाज में परंपरा के नाम पर बेड़ियां डाली जा रही हैं पाँव में। जो कि मनुष्य जाति में पुरुष वर्ग पर कम और स्त्री वर्ग पर ज़्यादा दिखाई पड़ती है, पूरे समाज की प्राचीन समय से एक जैसी मानसिकता बन चुकी है स्त्री व पुरुष के लिए जहां यह मानसिकता बहुत बड़ा भेदभाव बना चुकी है दोनों के मध्य। घर की चहारदीवारी के भीतर रह रहे संपूर्ण परिवार में माता–पिता भी हैं, बेटे–बेटियां भी हैं।

परंतु निर्णय लेने की क्षमता अलग–अलग है तो वहीं अधिकार भी सबको एक समान नहीं मिलते हैं। 'आलोक धन्वा' अपनी कविता 'भागी हुई लड़कियां' में कुछ इसी प्रकार की स्थिति का वर्णन कर रहे हैं–

"घर की ज़ंजीरें
कितना ज़्यादा दिखाई पड़ती हैं
जब घर से कोई लड़की भागती है
+ + + + +
कितनी–कितनी लड़कियां
भागती हैं मन ही मन
अपने रतजगे, अपनी डायरी में
सचमुच की भागी लड़कियों से
उनकी आबादी बहुत बड़ी है"[16]

आठवे दशक की हिंदी कविता में जीवन के या उस के आस–पास के उन सभी पक्षों को उठाया है, जिन पर प्रायः ध्यान कम दिया जाता है। 'भागी हुई लड़कियां' कविता में समाज का एक ऐसा पक्ष दिखाई देता है जहां पर लड़कियां अपना अधिकार या निर्णय नहीं ले पाती हैं या लेने की स्वतंत्रता नहीं होती वहां वे एक इतना बड़ा निर्णय ले जाती हैं कि उन्हें घर से भागना भी मंजूर होता है। चाहे वह किसी के प्रेमपाश के चलते घर से भागे या अपने स्वत्व की तलाश के लिए। उसे उस भागने में अपनी स्वतंत्रता मिलती हैं। वहीं ऐसी भी लड़कियां हैं जो घर से तो नहीं भाग सकती परंतु अंदर ही अंदर अपने भीतर निरंतर भागती है।

"आज का हिंदी कवि मुख्यतः मध्यवर्ग का व्यकित है। उसकी मध्यवर्गीयता उसकी कविताओं में बहुत स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति पाती है। आज की कविता की शक्ति और सीमाएं मध्यवर्गीय जीवन की शक्ति और सीमाओं का प्रतिरूप है।"[17]

वर्तमान व्यवस्था के प्रति क्षोभ भी है, जहां वे सारे नियम झूठे हो जाते हैं, जो एक आम आदमी की रक्षा के लिए उनके व्यवस्थित जीवन यापन के लिए बनाये जाते हैं। इस अव्यवस्था के प्रति जो खीझ है, जो आक्रोश है उसे कवि अपनी कविता द्वारा बयाँ करता है। राजेश जोशी की 'रुको बच्चो' कविता में यही आक्रोश दिखाई देता है–

"रुको बच्चो रुको

सड़क पार करने से पहले रुको

तेज़ रफ़्तार से जाती इन गाड़ियों को गुज़र जाने दो

वो जो सर्र.... से जाती सफेद कार में गया

उस अफ़सर को कहीं पहुचने की कोई जल्दी नहीं है

वो बारह या कभी–कभी तो इसके बार भी पहुंचता है अपने विभाग में

दिन महीने और कभी कभी तो बरसों लग जाते हैं

उसकी टेबिल पर रखी जरूरी फाइल को खिसकने में"[18]

सरकारी कार्यालयों में लगभग इसी तरह का हाल पाया जाता है। आम आदमी अपने कार्य के लिए दफ्तर के चक्कर काट–काट कर अपने चप्पल–जूते तक घिसा देता है, परंतु उसका कार्य पूरा नहीं होता और इससे सिर्फ चिड़चिड़ापन पैदा होता है, और व्यक्ति अंदर ही अंदर कुंठित हो जाता है। अपनी इसी कविता में राजेश जोशी आगे चलकर न्याय व्यवस्था पर भी व्यंग्य करते हैं –

"रुको बच्चो!

उस न्यायधीश की कार को निकल जाने दो

कौन पूछ सकता है उससे कि तुम जो चलते हो इतनी तेज़ कार में

कितने मुकदमें लंबित हैं तुम्हारी अदालत में कितने साल से

कहने को कहा जाता है कि न्याय में देरी न्याय की अवहेलना है

लेकिन नारा लगाने या सेमिनारों में

बोलने के लिए होते हैं ऐसे वाक्य"[19]

"समकालीन कविता जीवन के सौंदर्य और संघर्ष की कविता है। जीवन के वास्तविक सौंदर्य की पहचान ही संघर्ष की प्रेरणा देती है, क्योंकि तभी पता चलता है कि जीवन की किस सुन्दरता से विच्छिन्न होने के कारण मेहनतकश जनता जीवन की उस सुन्दरता से विच्छिन्न कर दी जाती है, जिसे वह खुद अपने हाथों से रचती है।"[20]

आगे चलकर जो आक्रोश है वह कहीं–न–कहीं कवि के मन में टीस बनकर उभरता है और यह टीस उसके भीतर अविश्वास पैदा करती है, कवि या आम आदमी के आस–पास का सारा माहौल ही अव्यवस्थित हो चुका है। अब उसे सारी दुनिया ही इस चक्रव्यूह में फँसी नज़र आती है। कवि गोबिन्द प्रसाद अपनी कविता 'न्याय का व्याकरण' में अपनी मनोव्यथा को कुछ इस प्रकार वाणी देते हैं –

"क्या फ़र्क़ पड़ता है

सुबह की दुनिया को

कल रात हो गए हादसे से"[21]

मंगलेश डबराल की कविताओं में भी यही टीस है। उनका समाज भी ऐसी ही कई कुवृत्तियों से भरा हुआ है। 'खुशी कैसा दुभाग्य' में वे इसी विडंबना को रेखांकित करते हैं–

"जिसने कुछ रचा नहीं समाज में

उसी का हो चला समाज

+ + + + +

जो नष्ट कर सकता है उसी का है सम्मान

झूठ फिलहाल जाना जाता है सच की तरह"[22]

वहीं अरुण कमल एक बेबस इंसान की बेबसी को बड़े ही सटीक ढंग से अभिव्यक्त करते नज़र आते हैं। वे 'अन्त' कविता में कहते हैं–

"आखिर इसी जान

इसी देह की ख़ातिर तो सब किया

जहां बोलना था चुप रहा

जिससे बोलना बन्द कर देना था उससे

हँस हँस कर बोला"[23]

"समकालीन कविता की आकाक्षा उन प्रगल्भताओं से मुक्त है जो रातों–रात समाज को बदल डालने का स्पप्न पालती है।"[24]

अरुण कमल अपनी कविता 'हमारे युग का नायक' में रातों–रात समाज को बदलने के स्थान पर यह आशा करते हैं कि एक दिन जरूर समाज बदलेगा –

"खत्म हो जायेगा एक दिन मूर्खों का राज

पकवानों का भोग छकता महन्थ

हथगोलों बारुद का ढेर गिनता सन्त

और माफिया गिरोहों के डॉन

नष्ट हो जायेंगे एक दिन"[25]

'एक था अबूतर, एक था कबूतर' में उदय प्रकाश चाटुकारों की चालाकियों पर प्रकाश डालते हुए बतलाते हैं कि किस प्रकार चापलूस लोग अपनी एक जमात बना

कर लोगों को भ्रमित करते हैं तथा समाज में जो ढाँचा व्यवस्थित है उसे अव्यवस्थित कर देते हैं। उदय प्रकाश लिखते हैं–

"अबूतर ने ख़ास पढ़ा नहीं था

लेकिन पढ़े हुओं को काटता था

कबूतर ने ख़ास लिखा नहीं था

लेकिन लिखे हुओं को डाँटता था।

अबूतर–कबूतर के पीछे भेड़िया पलटन थी

लोमड़ जमात थी, सत्ता थी,

पूरी कटखनी सल्तनत थी"[26]

मानवीय संवेदना समकालीन कवियों की कविताओं में स्थान–स्थान पर दिखाई देती हैं। किसी अन्य व्यक्ति या मनुष्य की पीड़ा को भलि–भाँति महसूस कर उसे अपनी कलम से रेखांकित करते हैं। 'गाता हुआ लड़का' मंगलेश डबराल की ऐसी कविता है जिसमें उन्होंने एक बारह –तेरह बरस के बच्चे की स्थिति को दर्शाया है जहां वह अपने पेट के लिए बस में गाता है, तथा साथ में उसकी चार बरस की छोटी बहन सब मुसाफिरों से घूम–घूमकर पैसा मांगती है –

"दिल्ली में वह एक उमस का दिन था

बारह–तेरह बरस का लड़का

भीड़–भरी बस में गाता था एक खुशी का मीठा गान

गले में नन्हा हारमोनियम लटकाये

उसकी चारेक बरस की बहन मांगती थी पैसा

मुसाफिरों से घूम–घूमकर"[27]

इसके आगे मंगलेश कविता में कहते हैं–

"आये याद मुझे पंडित भीमसेन जोशी

आज के बड़े प्रतापी गायक जो भागे थे घर से

संगीत सीखने जब वे ग्यारह के थे

पर क्या यह लड़का भी निकला होगा इसी तरह।"[28]

आज कवि तमाम विडंबनाओं, विद्रूपताओं और अव्यवस्था के बावजूद संवेदनशील है, वह अपनी लेखनी द्वारा उन दबी हुई आवाज को उभारने का काम कर रहे हैं, जो जीवन में कभी उभर नहीं पाए। जन्म लिया तो निर्धन परिवार में और उसके बाद खेलने–कूदने की उम्र में ही पूरे परिवार का भार अपने कंधे पे उठा लिया। जहां उनकी इच्छाओं का मरना कैसे विचलित करता है। लीलाधर मंडलोई अपनी कविता 'पीछा' में व्यक्त करते हैं –

"बूट चमकाते हुए लड़के को

देखा मैंने आज समीप से

थी इंद्रधनुष की ओट

हर रंग नुमाया उसके चेहरे पे

मेरे पास थी कुछ अन्तिम रेजगारी

दो–एक किताबें बच्चों की

एवज में काम के

दिया पाँच का एक सिक्का जब

गिरी एक किताब हाथ से

थाम जिसे लगा वह पलटने संकोच में

पहन के बूट मैं चल पड़ा जल्दी से

बस पन्ने पलटने की आवाज़

करती रही मेरा पीछा"[29]

"आज की कविता अपने रचाव–बनाव में एक लोकतांत्रिक कविता है। इसमें नायक नहीं है चरित है आसपास के जीवन के साधारण लोग बाग हैं।"[30] जहां आस–पास के साधारण लोग बाग हैं, वहीं ऐसे लोग बाग भी हैं जो सत्ता में आते ही पूर्ण रूप से बदल जाते हैं, उनके साधारण जीवन के स्थान पर कई सारे बदलाव आ जाते हैं। चंद्रकांत देवताले की कविता 'चीते को जुकाम होने से' का यह अंश देखिए–

"कि गद्दी नशीन होते ही भयावह ढंग से

हिंसक हो जाते हैं जब गिड़गिड़ाते हुए मेमने

तो यह तो चीता है

कितना भूखा हो जाएगा

जुकाम ठीक हो जाने के बाद"[31]

यहां चीते के माध्यम से भ्रष्टाचारी, मुनाफाखोरों, दहशतगर्दों के आतंक को, सत्ताधारियों के मुखौटे के पीछे छिपे चेहरे को दिखाने की कोशिश की गई है।

इस दहशतगर्द युग में व्यक्ति अंदर से भयभीत हैं, निरंतर उसके मन में डर है कि कहीं कोई हादसा न हो जाए उसके साथ। ऐसे में एक इंसान धीरे–धीरे अपने आस–पास की सभी वस्तुओं से दूर होने लगा है, वह अब एकाग्रचित नहीं हो पा रहा है, और प्रकृति के प्रति भी उसका मोह कम होता जा रहा है। वह प्रकृति को प्रेम तो करता है परंतु बिंब रूप में ही। विनोद कुमार शुक्ल की कविता 'प्रकृति में' का एक उद्धरण दृष्ट्व्य है–

"और मैं शहरी आदमी

प्रकृति से इस तरह अलग होता हूं

कि पेड़ को पीछे छोड बस में बैठ जाता हूं।

बस में बैठे मेरी इच्छा है

कि पूरे रास्ते में दोनों ओर पेड़ मिलते रहे

मैंने अपने कमरे में

पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है।"[32]

प्रकृति से दूरी का कारण व्यक्ति की निजी व्यस्तता है। ऊपर से आज व्यक्ति समूह में न रहकर अकेला रहने लगा है। अब वह संयुक्त परिवार में नहीं एकल परिवार में ज्यादा रहने लगा है। राजेश जोशी 'संयुक्त परिवार' कविता में महसूस करते हैं –

"मेरे आने से पहले ही कोई लाटै कर चला गया है

घर के ताले में पर्ची खुसी है

+ + + + +

इस तरह कभी कोई नहीं लौटा होगा

बचपन के उस पैतृक घर से

वहां बाबा थे, दादी थीं, मां और पिता थे

लड़ते झगड़ते भी साथ रहते थे सारे भाई बहन

कोई न कोई हर वक्त बना ही रहता था घर में

पल दो पल बिठा ही लिया जाता था हर आने वाले को

पूछ लिया जाता था गुड़ और पानी को

खबर मिल जाती थी बाहर गए आदमी की

ताला देखकर शायद ही कभी कोई लौटा होगा घर से।"[33]

इस समय की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि हम टेलिफोन, इंटरनेट, फेसबुक, टी.वी. आदि के माध्यम से दुनिया से तो जुड़े हुए हैं लेकिन आस–पड़ोस में कौन–कौन रहता है। इसकी हमें दूर–दूर तक कोई जानकारी नहीं है। यहां तक कि घर के सदस्यों तक के लिए समय नहीं निकाल पा रहे हैं।

आज की दुनिया विज्ञापन के दौर की दुनिया है। जहां संवेदना के लिए जगह कम है और बाजार हावी होता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति फैलती जा रही है। युवा कवि हेमंत कुकरेती की प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार से है इस संस्कृति की तरफ –

"कई बार....नहाने के लिए पानी लेने गया

और साबुन के भाव बिकते–बिकते बचा

यह तभी हुआ कि मैंने अपनी कीमत नहीं लगाई"[34]

आज उपभोक्तावाद चरम पर है। इसने गांवों की अर्थव्यवस्था को जो कभी आत्मनिर्भर होती थी पूर्णतः नष्ट–भ्रष्ट कर दिया है।

इस बाजारीकरण के बावजूद भी समकालीन कवि के मन में सहृदयता कम नहीं हुई है। परंतु वह चिंतिंत है उन लोगों को देखकर जो समाज में देश, धर्म, जाति के नाम पर बँटे हुए हैं। कवि चाहता है कि हम इंसान हैं और यही हमारा धर्म है यही हमारी जाति है। कवि गोबिन्द प्रसाद अपनी कविता 'इंसान की बोली' में लिखते हैं –

"मंदिर तो है

मस्जिद तो है

लेकिन प्रार्थना नहीं है

मंदिर की बोली मत बोलो

मस्जिद की बोली मत बोलो

मत बोलो मंदिर–मस्जिद की बोली

इंसान की बोली कब अपनाओगे

इससे बड़ी कोई प्रार्थना नही है।"[35]

गिरधर राठी ने सन् 1984 के दंगे पर कविता लिखी। जिसमें तत्कालीन समय में जो वातावरण बन गया था, उसका यथार्थपरक वर्णन अपनी कविता 'दिल्ली 1984' में किया है –

"क्या तुम ने देखे धू–धू करते मकान ?

हां मैं ने देखे।

और शहर पर मँडराता धुआँ ?

हां।

क्या तुमने सुना शोर ?

हां मैंने सुना।

भागते हुए हुजूम ?

हां।

और वे जो भाग नहीं सके ?

नहीं। कुछ दिनों बाद

देखे मैंने ढेर राख के

जिन में शायद दबी थीं कुछ हड्डियां

कुछ नर–कंकाल।"[36]

समकालीन कवि मनुष्य पर हो रहे अत्याचार, अन्याय की बात करता है, उस पर प्रकाश डालता है। वह शोषितों की दशा को अपनी कलम द्वारा रेखांकित करते हुए जन–जन तक पहुंचाता है। ऋतुराज की एक कविता 'रोटी' में वर्णन देखिए –

"तुमने फिर मुझे जली हुई रोटी दे दी।

काले आदमी की ज़बान पर

पहले से ही ज्यादा कालिख लगी है

तुमने देखा, वह गाली बकता है

और कहता है

'यह मेरा विद्रोह नहीं है

भले ही मुझसे ठोक बजाकर काम लो।'

+ + + + +

'तुमने मेरी ज़वानी को

आटे की तरह गूँथा है ...

तुम बड़े राक्षस हो ...

मेरे खून की कमी में भी

मुझसे चाहते हो कि तुम्हें शहद दूँ...

तुम्हारी आँखों की हवस...

तुम्हारी ज़वान की ज़हर बुझे चाबुकों की फटकार...

ओह, मुझे अपनी तेज भूख में भी

वह रोटी के अलावा

कुछ और सोचने को मज़बूर करती है।"[37]

इसी प्रकार समकालीन कवियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों को अपनी लेखनी के माध्यम से वाणी दी है। जो यथार्थ के अधिक निकट जान पड़ते हैं। ए. अरविंदाक्षन के अनुसार – "एक जटिल समस्या में समकालीन कविता हमारे जीवन की समग्रता की कविता है।"[38]

समकालीन कविता उन सभी पक्षों को उभारने का कार्य कर रही है जो समाज में लुप्त प्रायः हो जाया करते हैं।

संदर्भ

[1] ए. अरविन्दाक्षन, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 21

[2] प्रधान सं. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, हिंदी भाषा और साहित्य समग्र अध्ययन, पृ. 255

[3] वही, पृ. 271

[4] केदारनाथ अग्रवाल, कहे केदार खरी–खरी, पृ. 30

[5] प्रधान सं. डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, हिंदी भाषा और साहित्य समग्र अध्ययन, पृ. 276

[6] वही, पृ. 279

[7] वही, पृ. 279

[8] अजय तिवारी, समकालीन कविता और कुलीनतावाद, पृ. 252

[9] राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, पृ. 168

[10] सं. डॉ. वीरेन्द्र सिंह, समकालीन कविता, पृ. 42

[11] वही, पृ. 77

[12] परमानन्द श्रीवास्तव, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 5

[13] ए. अरविन्दाक्षन, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 46

[14] विनय विश्वास, आज की कविता, पृ. 9

[15] लीलाधर जगूड़ी, अनुभव के आकाश में चाँद, पृ. 25

[16] आलोक धन्वा, दुनिया रोज बनती है, पृ. 41, 45

[17] सं. लीलाधर मंडलोई, कविता के सौ बरस, पृ. 61

[18] राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, पृ. 23

[19] वही, पृ. 23

[20] सं. वीरेन्द्र सिंह, समकालीन कविता, पृ. 77

[21] गोबिन्द प्रसाद, कोई ऐसा शब्दो, पृ. 34

[22] मंगलेश डबराल, आवाज भी एक जगह है, पृ. 88

[23] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ. 26

[24] सं. लीलाधर मंडलोई, कविता के सौ बरस, पृ. 345

[25] अरुण कमल, नये इलाके में, पृ. 88

[26] उदय प्रकाश, अबूतर–कबूतर, पृ. 72–73

[27] मंगलेश डबराल, आवाज भी एक जगह है, पृ. 60

[28] वही, पृ. 61

[29] लीलाधर मंडलोई, काल बाँका तिरछा, पृ. 73

[30] राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, पृ. 149

[31] सं. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 183

[32] वही, पृ. 202

[33] राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच, पृ. 54

[34] सं. परमानंद श्रीवास्तव, समकालीन हिंदी कविता पृ. 323

[35] गोबिन्द प्रसाद, मैं नहीं था लिखते समय, पृ. 61

[36] गिरधर राठी, निमित्त, पृ. 34

[37] ऋतुराज, अबेकस, पृ. 87–88

[38] ए. अरविन्दाक्षन, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 11

अध्याय द्वितीय

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री–स्वर

प्राचीन समय का आंकलन किया जाय तो, हम देखेंगे कि हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज था। जहां पर स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। इसी पुरुष प्रधान समाज से ही कुछ महान पुरुष भी हुए जैसे – राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचंद विद्यासागर आदि। इन महान पुरुषों के आने के बाद समाज में कई आंदोलन हुए जिससे कि स्त्री की दशा में सुधार आने लगा। समाज में जो घटा उसे साहित्य ने अपने में संजोया व जन–जन तक पहुंचाया।

साहित्य इतिहास के फलक पर अर्थात् हिंदी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक काल तक देखा जाए तो स्त्री साहित्यकारों में आदिकाल के बाद भक्तिकाल में आकर मीराबाई का नाम सुनाई पड़ता है तथा उनकी रचनाएं उपलब्ध होती हैं, इसके अतिरिक्त सहजोबाई का नाम भी सुनाई देता है। उसके बाद रीतिकाल में आकर यह स्वर (स्त्री स्वर) शून्य की ओर चला जाता है और उसके पश्चात आधुनिक काल में आकर छायावादी युग में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि स्त्री–साहित्यकारों के नाम साहित्य जगत में उभरकर सामने आते हैं। तत्पश्चात् प्रगतिवाद में यह स्वर फिर धीमा हो जाता है। इसके बाद क्रमशः प्रयोगवाद, नई कविता में शकुन्त माथुर, कीर्ति चौधरी काव्य रचना करती नज़र आती हैं। नवगीत, साठोत्तरी कविता में यह प्रवाह थम जाता है तथा अकविता में मोना गुलाटी, स्नेहमयी चौधरी ये कवयित्रियां हमारे समक्ष आती हैं।

स्त्रियों की सुधरती दशा पर अपना मत प्रकट करते हुए विनय विश्वास लिखते हैं – "...स्त्रियों को दलित घरों में भी खुलकर बोलना मयस्सर नहीं हुआ। सर्वत्र दलित रही वे। समकालीन कविता का एक बड़ा हिस्सा उनकी बोली–बानी से गुंजित है। कारण इसका भी अपने पैरों पर खड़े होने की जगह पाना है। धनतंत्र ने जब मुनाफ़े

को अनंत बनाने के लिए स्त्रियों का इस्तेमाल किया तो अर्थव्यवस्था में उनकी भी थोड़ी–बहुत जगह बनी। इस जगह अपने पैरों पर खड़े होकर स्त्री ने अपने लिए संभावनाओं के नए द्वार खोले। घरेलू स्त्री के समानांतर कामकाजी स्त्री की छवि स्थापित की। पुरुष के वर्चस्व–कवच को जगह–जगह दरकाया। लाज, संकोच, विवाह, भय, प्रलोभन आदि गुलामी के अनेक रूपों के सामने चुनौतियां खड़ी कीं। केवल त्याग की देवी बनने से इंकार किया। घर के साथ कार को भी चलाया। अपनी तरह जीने के रास्ते खोजे। नहीं मिले तो बनाए। अपनी स्वतंत्रता को धीरे–धीरे अर्जित करना शुरू किया।

समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में होने वाला परिवर्तन कविता ने देखा। कहा। स्त्री का पूरा जीवन नष्ट कर देने के लिए पहले उसके साथ एक बलात्कार ही काफ़ी होता था। अब ऐसा नहीं है।"[1]

सन् 1975 आपातकाल के बाद जो कविता लिखी गई उसे समकालीन कविता नाम से अभिहित किया गया। इस दौर में कई स्त्री कवयित्रियों ने साहित्य में पदार्पण किया जिनमें प्रमुखतः सुनीता जैन, इन्दु जैन, गगन गिल, निर्मला गर्ग, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, निलेश रघुवंशी आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इनसे पहले जिन कवयित्रियों यथा शकुन्त माथुर, कीर्ति चौधरी, मोना गुलाटी, स्नेहमयी चौधरी ने जो काव्य सर्जना की उसमें स्त्री स्वर प्रबल दिखलाई नहीं पड़ता, उनके मूल सरोकार स्त्री चिंताओं के इर्द–गिर्द नहीं हैं उनका स्वर आंदोलनात्मक नहीं है। "अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 1975 का वर्ष अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गयया था। यह दुनियाभर में विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के प्रति बरती जा रही असमानता व उसके कारणों की ओर ध्यान दिलाने की संयुक्त राष्ट्र की कोशिश थी।"[2]

स्त्री विमर्श एक आंदोलन है। समकालीन हिंदी कविता में जो स्त्री कवयित्रियां हैं उनका स्वर एक अलग भिन्नता लिए हुए है। यद्यपि इस स्वर में विचारधारा के स्तर पर पर्याप्त भिन्नता है, स्त्री–स्वर के कई स्वरूप हैं जो अपने आप में काफी भिन्नता लिए हुए हैं। उनके जो प्रमुख मुद्दे, एवं आधारभूत मान्यताएं हैं उसमें देह से जुड़े

प्रश्न, नारी मुक्ति का प्रश्न, नारी अस्मिता से संबंधित प्रश्न हैं, हर चीज में बराबर की भागीदारी का प्रश्न है। देह और सेक्स से जुड़े प्रश्न है, पुरुष वर्चस्व से मुक्ति जैसे प्रश्न, वैचारिक बिंदु के धरातल पर काव्य संवेदना को कैसे अभिव्यक्ति देते हैं – उसका व्यावहारिक पक्ष हम कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

स्त्री देह का प्रश्न

एक स्त्री के लिए सबसे बड़ा प्रश्न उसकी देह है। प्रकृति ने उसकी निर्मिति पुरुषों के समान होते हुए भी भिन्न की है। जब घर में एक कन्या जन्म लेती है तो वह शिशु रूप में परिचय पाती है। परंतु शिशु से लड़की और लड़की से औरत उसे बनाया जाता है। स्त्री अपनी देह से तो मुक्त नहीं हो सकती। परंतु उसकी देह पर पड़ने वाली मार से वह मुक्त होना चाहती है, अपनी देह पर हो रहे अत्याचार, प्रताड़ना से मुक्त हो जाना चाहती है। समकालीन कवयित्रियों का यही संघर्ष है अपनी कविता में। इंदु जैन अपनी कविता 'युद्ध में औरत' में लिखती हैं–

"मैं जहां जब भी जाऊँगी
औरत की देह में रहूंगी

समझने लगी थी कि
अब मेरी उम्र मेरा कवच है
लेकिन अखबारों ने बताया
कि औरत की उम्र सिर्फ उसकी देह होती है
वह गर्भवती हो, बच्ची, अधेड़ या बूढ़ी
इस्तेमाल की चीज़ रहती है।"[3]

इंदु जैन की इस कविता में समाज का जो खाका प्रस्तुत किया गया है, वह एकदम सही है। हमारे समाज में बच्ची से लेकर वृद्धा तक, तमाम स्त्री जाति को भोग

की वस्तु समझा जाता है। अखबार द्वारा हम उन घटनाओं तक पहुंचते हैं। वही कुछ बलात्कार ऐसे होते हैं, जो समाचार–पत्र तक पहुंच ही नहीं पाते हैं।

इस संदर्भ में लीलाधर मंडलोई लिखते हैं – "कहना न होगा कि स्त्री के मानवीय सौन्दर्य की सहज अनदेखी हो रही है। उसे सिर्फ़ देह तक सीमित कर दिया गया है।"[4]

नारी मुक्ति का प्रश्न

नारी ने जब से इस धरा पर जन्म लिया वह पंरपरा, संस्कृति से जुड़ती चली गई। जिसमें उसकी इच्छा अनिच्छा का कोई महत्त्व नहीं था। उसे जिन रीति–रिवाज़ों से बांधा गया, वह बँधती चली गई। परंतु समकालीन समय में आकर स्त्री अब उन थोपी गई परंपरा, रीति–रिवाज़ों से मुक्ति पाना चाहती है। इस संदर्भ में निर्मला गर्ग की ये काव्य पंक्तियां बराबरी का दर्जा मांगती नज़र आती है –

"यह कैसा विधान है !

मैं भूखी रहूंगी तो निरंजन ज़्यादा दिनों तक जिएंगे!

यदि ऐसा है तो निरंजन क्यों नहीं रहते मेरे लिए निराहार

क्या मुझे ज़्यादा वर्षों तक नहीं जीना चाहिए ?

शास्त्रों को स्त्रियों की कोई फिक्र नहीं।"[5]

स्त्रियां सदा से पुरुष वर्ग के लिए व्रत करती आई हैं। उपरोक्त पंक्तियों में निर्मला गर्ग इसी बात को उठाती हैं कि पुरुष (पति) की लंबी आयु के लिए स्त्री (पत्नी) पूरा दिन निर्जल निराहार रहे। यह कौन–सी दुनिया का नियम है। क्या लंबी उम्र पुरुषों को ही चाहिए औरतों को नहीं। इसी प्रकार की न जाने कितनी रीतियां हैं जो स्त्रियों पर थोपी गई, थोपी जाने के साथ बचपन से ही उन्हें इस चीज़ का आदि बना दिया गया है।

स्त्री मुक्ति चाहती हैं इन रूढ़ियों से। वह स्वतंत्र रूप से जीना चाहती हैं। नीलेश रघुवंशी की कविता में मुक्ति की आकांक्षा का स्वर कुछ इस प्रकार दिखाई देता है –

"स्त्री पंछी को अपनी हथेली में लिए खड़ी है

लेकिन

पक्षी की आँखों में जकड़न नहीं

न मुक्त होने की आकांक्षा से उपजी खुशी

ये सब तो स्त्री की आँखों में है"[6]

अपनी अन्य कविता 'स्त्री–विमर्श' में नीलेश रघुवंशी स्त्री–मुक्ति की अपनी प्रबल इच्छा को कुछ यों अभिव्यक्त करती हैं–

"मिल जानी चाहिए अब मुक्ति स्त्रियों को

आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति"[7]

नीलेश अपनी कविता के माध्यम से बताना चाहती हैं कि अब हमें वास्तविक रूप में मुक्ति चाहिए न कि कागज के पन्नों में। अब कविताओं में मुक्ति नहीं अपने मूल जीवन में मुक्ति चाहिए।

नारी अस्मिता का प्रश्न

स्त्री मुक्ति की कामना तो करती है परंतु वह यह भी चाहती है कि उसकी अस्मिता, उसकी पहचान समाज के सामने बने। बड़ी बात यह है कि उसे कभी उसके कार्य से नहीं जाना गया। न ही कभी उसके महत्त्व को स्वीकारा गया। वह घर के भीतर बंद रही, कभी आवाज़ निकालने की कोशिश की तो उसकी आवाज़ को बंद कर दिया गया। वह निरंतर अपनी अस्मिता की खोज में लगी हुई है। कात्यायनी की कविता 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना' में भी स्त्री अपनी अस्मिता तक पहुंचना चाहती है –

"अब मैं जीवित होना चाहती हूं दुर्गपति,

मुझे जाने दो

मैं अपनी पहचान तक जाना चाहती हूं

अपनी आत्मा तक

अपनी अस्मिता तक जाना चाहती हूं मैं।"[8]

समकालीन कवयित्री सविता सिंह भी अपनी कविता में स्त्री अस्मिता का सवाल उठाती है। डॉ. गोबिन्द प्रसाद लिखते हैं – "लेकिन उनके यहां स्त्री अस्मिता से जुड़े अनुभवों की सश्लिष्टता है। सविता सिंह अपने औरत होने पर नहीं बल्कि किसी की औरत होने पर सवाल उठाती हैं और ख़ुद से पूछती हैं–

"मैं किसकी औरत हूं

कौन है मेरा परमेश्वर

किसके पाँव दबाती हूं

किसका दिया खाती हूं

किसकी मार सहती हूं...

ऐसे की ये सवाल उसके

बैठी थी जो मेरे सामने वाल सीट पर रेलगाड़ी में मेरे साथ सफ़र करती।"[9]

इस पर कवयित्री जो अस्मिता बोध से जुड़ा जवाब देती है, वह अपने आप में एक नया स्त्री जागरण है –

"सोचकर बहुत मैंने कहा उससे

'मैं किसी की औरत नहीं हूं

मैं अपनी औरत हूं

मैं किसी की मार नहीं सहती

और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।"[10]

विमल कुमार लिखते हैं – "महिलाओं के कारण हिंदी कविता परिदृश्य आज जितना समृद्ध है, उतना कभी नहीं था। जाहिर है हमारे समाज में भी इस बीच बदलाव आया है। बाजार ने भी स्त्रियों में एक तरह का आत्मविश्वास पैदा किया है और शिक्षा ने भी। महिला साक्षरता दर भी इस दौर में बढ़ी है। आज स्त्रियां अपना सुख–दुख, आक्रोश, क्रोध, असहमति व्यक्त कर रही हैं। वे महादेवी की 'दुख भरी बदली' की करुणाजनक तस्वीर नहीं है और न ही मैथिलीशरण गुप्त की अबला जीवनहाय! तेरी यही कहानी, आंचल में दूध आँखों में पानी में यकीन रखती है।"[11]

जहां सविता सिंह की स्त्री अपनी अस्मिता को पहचान रही है, वही निर्मला गर्ग की स्त्री ऐसी है जिसने अपनी आधी उम्र निकाल दी, घर गृहस्थी के लिए परंतु उसकी अस्मिता केवल खाली शीशी मात्र रह गई –

"हम परिवार की ईंट नहीं है

उसमें दौड़ता रक्त भी नहीं

हम तो सिर्फ शीशियां हैं खाली'

सतरह वर्ष गृहस्थी में खपने के बाद

एक स्त्री कहती है"[12]

समाज में भी यही स्थिति है आज बहुत–सी स्त्रियां विरोध करना सीख गई हैं, परन्तु बहुत–सी स्त्रियां ऐसी भी है जो बरसो पुराने उसी दलदल में धँसती जा रही है, जिनसे उन्हें बाहर निकलना है। आज भी उनके भीतर ये बात विद्यमान है कि उनकी अस्मिता उनके पति से उनके बच्चों से है, और उस जड़ मानसिकता के परिणाम को ही वे अपनी खुशी मानती हैं। वहीं कुछ ऐसी स्त्रियां भी हैं समाज में जो समानता के नाम पर मनमाना व्यवहार करती हैं, वे चाहे घर में हों या बाहर दफ्तर में। परंतु इनकी तादाद कम है।

बराबर की भागीदारी का प्रश्न

स्त्री एक प्राणी है, उसे भी हर कार्य में बराबर की भागीदारी का हक होना चाहिए। प्रायः प्राचीन समाज में होता यह था कि स्त्रियां घर का चूल्हा, चौका, बर्तन सँभालती थी और घर के पुरुष बाहर का काम करते थे। महिलाओं को इतनी भी आज़ादी नहीं थी कि वे अपनी मन मर्जी से कहीं जाकर घूम आएं। उन्हें नौकरी करने की भी इजाज़त नहीं थी। पुरुष खेलकूद, पढ़ना–लिखना, सैर–सपाटा सभी कर सकते थे। परंतु औरतों के हालात इससे भिन्न थे। कुछ रईस परिवारों की औरतों को भले ही इन सभी क्रियाकलापों में भागीदारी करने की मंजूरी थी परंतु आम औरत का पूरा जीवन पति की सेवा, परिवार की देख–रेख और बच्चों को पालने–पोषने में ही बीत जाता था। समाज में स्त्रियों की स्थिति में बदलाव का श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है, उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ते हुए, कुरीतियों का खंडन करते हुए स्त्रियों की दशा में सुधार किया, सती प्रथा का विरोध, विधवा–विवाह निषेध का विरोध, बाल–विवाह का विरोध किया। तत्पश्चात ही प्राचीनकाल से लेकर आज तक के समय में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। आज औरतें हर क्षेत्र में आगे जा रही हैं। और हर कार्य में अपनी भागीदारी दे रही है। परंतु आज भी स्त्रियों के लिए पारिवारिक बंधन लगे हुए हैं, उनके जीवन में कई प्रकार की घेराबंदी है। कात्यायनी की कविता 'हाँकी खेलती लड़कियां' में लड़कियां वर्षों पुराने बंधनों को जहां तोड़ रही है, वहीं वे घर के कई क्रिया–व्यापारों को तोड़ने में असमर्थ हो रही हैं –

"आज शुक्रवार का दिन है
और इस छोटे से शहर की ये लड़कियां
खेल रही हैं हॉकी।
खुश हैं लड़कियां
+ + + + +
वहां इन्तज़ार कर रहे हैं

उन्हें देखने आये हुए वर पक्ष के लोग,

वहां अम्मा बैठी राह तकती है

कि बेटियां आयें तो

संतोषी माता की कथा सुनायें"[13]

जहां लड़कियां हॉकी खेल रही हैं वहीं घर में उनका इंतज़ार इसलिए हो रहा है कि वे सर्वप्रथम तो वर पक्ष के लोगों के सामने आये और आवभगत करें वहीं दूसरी तरफ मां इंतज़ार में है कि कब बेटियां आयेंगी और कथा सुनाएंगी, वहीं बेटों से ऐसी कभी कोई उम्मीद नहीं होती फिर भी उनके प्रति एक गहरा लगाव रहता है।

हर चीज़ में बराबरी का हक चाहने वाली स्त्रियां कार्यालय, दफ़्तर तक काम करने तो पहुंच गई हैं, परंतु शारीरिक व मानसिक थकान वहां उन्हें घेरे रखती है। गगन गिल लिखती है 'दफ़्तर में ऊँघती हैं लड़कियां' –

'दफ्तर में ऊँघती हैं लड़कियां

ऊँघती हैं काम से, थकान से

ऊँघती हैं ऊब से, अधनींद से

चलती हुई नींद में

ऊँघती हैं लड़कियाँ

बुनती हैं हज़ार उधेड़–बुनें

सुन्न होती उनकी चेतना में

खिट–खिट करती हैं हज़ार फ़िक्रें

अधछोड़े कितने ही काम वे

निपटाती हैं ऊँघ में'[14]

दूसरी तरफ नीलेश रघुवंशी 'स्त्री की नींद' नामक कविता में लिखती हैं–

"नींद से भरी हुई इस स्त्री को देख

दफ्तर के लोग पीटते हैं सिर कोसते हैं अपने बीच उसके होने को

घर और दफ्तर के कभी न खत्म होने वाले कामों के बीच

स्त्री की नींद कसमसाती है"[15]

स्त्री अगर बाहर दफ़्तर सँभाल रही है तो उसके लिए घर में भी काम की कमी नहीं है, और शारीरिक थकान उसे दोनों जगह परेशान करती है, यदि एक घर में स्त्री पुरुष का शुरू से ही पालन–पोषण समान रूप से किया जाए तो एक इंसान पर काम का बोझ कम आयेगा।

ओशो ने लिखा है कि –

"...बचपन से प्रत्येक लड़की को यह हक मांगना चाहिए कि वह लड़के के साथ बराबर बड़ी होगी। लड़के के साथ पढ़ेगी, लड़के के साथ दौड़ेगी, लड़के साथ तैरेगी। लड़के के साथ उसकी ज़िंदगी है। उसको उसके साथ बड़ा होना है। तभी हम एक ऐसी दुनिया बना पाएंगे जहां स्त्री और पुरुष के बीच दीनता का भाव मिट जाए। अन्यथा नहीं मिट पाएगा।"[16]

देह और सेक्स से जुड़े प्रश्न

एक स्त्री के कई रूप होते हैं, वह बेटी, बहन, मां, पत्नी आदि कई रूपों में हमारे बीच रहती है। प्रकृति प्रदत्त उसकी जो देह है, उसे हमेशा ही कोमल, नाजुक समझा गया है। और ऐसा समझने का आधार यह है कि उसे शिशु अवस्था से ही ऐसी परवरिश दी जाती है, जिसमें धीरे–धीरे उसके भीतर यह बोध स्वतः ही आता जाता है कि वह पुरुष से कमजोर है। इसी कमजोरी का फायदा उठाकर कुछ दुष्ट प्रवृत्ति के लोग जबरन युवा लड़कियों, किशोरियों, स्त्रियों को देह व्यापार के दलदल में धकेल देते हैं। समकालीन समय में देह व्यापार खूब हो रहा है। कात्यायनी 'रात के संतरी की

कविता' में स्त्री के अलग–अलग रूपों का, उनके कार्यों का वर्णन करती हैं जिनमें से देह और सेक्स का भी एक प्रश्न है –

"रात को

ठीक ग्यारह बजकर तैंतालिस मिनट पर

दिल्ली में जी.बी. रोड पर

एक स्त्री

ग्राहक पटा रही है

+ + + + +

बंबई के एक रेस्त्रां में

नीली–गुलाबी रोशनी में थिरकती स्त्री ने

अपना आख़िरी कपड़ा उतार दिया है।"[17]

वास्तव में हालात ये हैं कि स्त्री जब इस दलदल में फँस जाती है और उसके निकलने का कोई रास्ता नहीं मिलता तब वह उसी जीवन को अपना लेती है। और अब कुछ–कुछ स्त्रियां ऐसी हैं जो रुपया कमाने, ऐश–ओ–आराम के लिए इस धँधे में जा रही है, इनकी संख्या कम है। परंतु ये भी एक पहलू है। कात्यायनी ने भलि–भाँति इस बात का वर्णन अपनी कविता में किया है।

पुरुषों में स्त्री की देह के प्रति आकर्षण होता है। परंतु कुछ अपवाद ऐसे होते हैं जिनके भीतर काम भावना कुंठा के रूप में विद्यमान हो जाती है। जिसका दुष्परिणाम होता है बलात्कार। समकालीन कवयित्री सविता सिंह एक ऐसी स्थिति को बयां कर रही हैं जहां यातना शिविर में ठहरे लोगों की बहनों, बेटियों के साथ बद्सुलूकी की जा रही थी–

"एक तरफ पथरा गयी आँखें कंचों–सी

देखे थे जिन्होंने बलात्कार बहनों बेटियों माशूक़ाओं के

उनके नुँचे स्तन घायल गर्दन कटी–फटी बाँहें

थके ध्वस्त हुए अनगिनत शरीर कराहते लुढ़के

और इस हक़ीक़त के भीतर बचीं वे तमाम औरतें नौजवान बच्चे बूढ़े

यातना शिविरों में खलबल मारे भय के'[18]

पुरुष वर्चस्व से मुक्ति

औरत जाति ने अपने पति को स्वामी माना, उसे परमेश्वर माना, किंतु उसने अपनी पत्नी को कभी देवी या मालिक नहीं माना, उसे मारा पीटा उसे यातनाएं दी। कभी समानता का व्यवहार नहीं किया और न ही उसे सम्मान दिया। अनामिका 'दरवाज़ा' नामक कविता में व्यक्त करती हैं–

"मैं एक दरवाज़ा थी

मुझे जितना पीटा गया,

मैं उतना खुलती गई।"[19]

अनामिका ने किस प्रकार से एक औरत की देह को दरवाजा बताते हुए उसके खुलने का वर्णन किया है, लेकिन हर स्त्री दरवाज़ा नहीं हो पाती। बहुत–सी स्त्रियां उसे ही अपना भाग्य समझ लेती है, परंतु वे इस बात से दूर हैं कि भाग्य कुछ नहीं होता, अब उन्हें अपने बारे में स्वयं सोचना है, कोई उनकी मदद नहीं करने वाला है, अपने वर्तमान, भविष्य का निर्माण उन्हें स्वयं करना हैं

नीलेश रघुवंशी स्त्री के उस चरित्र को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर रही हैं जो मार खाकर, पिटकर, अपमान सहकर भी सुखी और खुश होने का अभिनय करती है–

"पिटती अपमान सहती

सिसकती धीरे–धीरे।

अचानक किसी के आ जाने पर

जुकाम कह सुड़कती नाक

बाहर से सुखी सम्पन्न भीतर से टूटी–फूटी"।[20]

यह उसका स्वभाव नहीं, अपितु उसे ऐसा बनाया गया है, शुरू से। निम्न, मध्यम वर्ग में तो औरतों की स्थिति दयनीय है। गांवों, कस्बों में औरतों को पीटना तो आम बात है। बली सिंह की एक कविता हैं, उसमें वे लिखते हैं –

"इस गांव में

औरतों को पीटना तो जैसे नहाना है

जैसे रोज़ खाना खाना है"[21]

गांव से शहर की ओर बदलाव तो आया है परंतु वह भी थोड़ा बहुत ही आया है।

पुरुष वर्चस्वता हमारे समाज में गहराई तक व्याप्त है। यहां तक कि महिलाएं भी बेटी के स्थान पर बेटा पैदा होने की कामना करती हैं। सुनीता जैन ने 'पुत्रिणः सन्तु' कविता में लिखा है –

"अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु

पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः

बड़ी मन्नतों से पाती हैं

बेटे मांएं। रखती हैं व्रत

देती हैं दान

और फिर एक दिन

देखती उन्हें जाते

बम्बई यया कलकत्ते

मैनचेस्टर या न्यूयार्क

अपने आँसू पलकों में थामे

चौखट पर रहती हैं मांएं।"[22]

ऐसा नहीं है कि कवयित्रियों की कविताओं में ही ऐसा वर्णन है, कुछ कवियों ने भी इस मानसिकता का वर्णन अपनी कविता में किया है। बली सिंह की कविता है –

"मां भी वैसी ही है

जहां कहीं सुनती है कि फ़लां को लड़की हुई है

उसके गोडे–से टूट जाते हें

और कहने लगती है

लड़के के बिना चाँदना–सा नहीं होता घर में।"[23]

ए. अरबिंदाक्षन लिखते हैं – "कवयित्रयों की कविताओं पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस दिशा में अन्य कवियों का योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह इसलिए कि उनकी कविताओं में भी स्त्री–सत्ता के ऊपर पुरुषाधिष्ठित वर्चस्व को व्यापक अर्थ में ही लिया गया है। स्त्री के प्रति निरी सहानुभूति व्यक्त करना उनका उद्‌देश्य नहीं है। पिछड़ेपन को सुरक्षित रखनेवाली पूँजीवादी दृष्टि के अन्तर्गत इन कवियों ने स्त्री और उसकी बेबसी को देखा है।"[24]

समकालीन कवि लीलाधर मंडलोई भी अपनी कविता 'कस्तूरी' में एक स्त्री का वर्णन कर रहे हैं, जिसे मर्द की गुलामी मंजूर नहीं है, वह आत्मनिर्भर होकर जीना चाहती है। मंडलोई वर्णन करते हैं –

"उसे मर्दजात की गुलामी नामंजूर थी

धर्म की किताबों से उसने वास्ता न रखा

प्रेम को गुलामी की वह पहली सीढ़ी मानती थी

ईश्वर की मायाओं को वह निरा झूठा समझती थी

शिवलिंग पूजक स्त्रियों पे

वह खुलके हँसती थी

कहना था उसका 'मैं लिंग पूजक नहीं, न शिव की

न ही किसी और की'

अपनी कोख को लेके उसमें

अजीब–सा वितृष्णा भाव था

वह नहीं चाहती थी अपना कोई उत्तराधिकारी"[25]

इस स्वर को कवियों ने भी अपने लेखनी के माध्यम से पुखर किया है। वे भी इस बात से अवगत हैं कि एक स्त्री ने आदि से अब तक बहुत यातनाएं सही हैं।

अपने घर का प्रश्न

स्त्री एक घर में पैदा होती है, परंतु पैदा होते ही उसके अगले घर जाने की बातें शुरू हो जाती है। बचपन से लेकर युवा होने तक उसे इस बात के लिए तैयार कर दिया जाता है कि यह घर उसका नहीं है। उसका घर तो विवाह पश्चात् उसका ससुराल होगा। जिसे वह सहज रूप से स्वीकार करना सीख जाती है।

"लड़की विवाह के आगे कुछ भी सोच न पाने को बाध्य है। बचपन में मजाक में कहे हर वाक्य में विवाह की गूँज मौजूद होती है। बचपन से जवानी तक विवाह, शादी, पति, सास, ससुराल यहीं से बात शुरू होकर इन्हीं के चारों और घूमती रहती हैं। उधर

लड़की न चाहते हुए भी इन्हीं भावनाओं में गोते लगाती रहती हैं क्योंकि घेराव इतना कठोर है कि उसकी जकड़ से मुक्त होना संभव नहीं। एक चतुराई के तहत लड़कियां इस घेराव के अंदर बने रहने के लिए निर्मित की जाती हैं।"[26]

"स्त्री का सबसे गंभीर संकट उसका पराया समझा जाना है। जिस घर में वह जन्म लेती है वहां वह तदर्थवाद का शिकार होती है, उसके परिवार वाले सदैव सोचते हैं कि यह घर उसका नहीं है यानी घर का भौगोलिक परिवेश किसी भी कन्या के लिए स्थायित्व से भरा नहीं होता है। घर के वास्तु में ऐसा कोई 'स्पेस' नहीं होता जो केवल बेटी का होता है। इन बातों को लेकर अनामिका ने काफी मार्मिक कविता लिखी है–

"राम पाठशाला जा!

राधा, खाना पका!

राम, आ बताशा खा!

राधा झाड़ू लगा!

भैया अब सोएगा,

जा कर बिस्तर बिछा!

अहा! नया घर है

राम! देख यह तेरा कमरा है!

'और! मेरा ?'

'ओ पगली!

लड़कियां हवा, धूप, मिट्टी होती है

उनका कोई घर नहीं होता।"[27]

यह अन्तर किसी अन्य ने नहीं अपितु एक स्त्री के परिवार वालों ने स्वयं किया है। ससुराल में जाने के बाद भी वह निश्चित नहीं होती कि क्या सही में यही मेरा घर है। कवि गोबिन्द प्रसाद ने अपनी कविता में इसी व्यथा का वर्णन किया है–

"ज़माना जिसमें घर ढूँढ़ रहा था

उसका का अपना कोई घर न था

लड़की की यही त्रासदी थी!"[28]

"आज नारी–विमर्श की कविताएं विविध रंगरूप लेकर आ रही हैं। उनका दुख–दर्द पुरुषों की सृजनशीलता में समा रहा है। यह नारियों के जिए सुखद प्रसंग है। उसने अपने कलम मसि में नहीं आंसू में डुबाया है। आज के साहित्य ने नारियों को उनका आकाश दिया।

पुरुष वर्ग पहले से उदार हुआ है, बंधन शिथिल हुए हैं। आज स्त्री स्वयं प्रयत्नरत है। सृजनशीलता के साथ अपने को स्थापित कर रही है।"[29]

संदर्भ

[1] विनय विश्वास, आज की कविता, पृ. 60–61

[2] संपादक / सहायक संपादक :प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा – स्त्री मुक्ति का सपना, पृ. 42

[3] इन्दु जैन, हवा की मोहताज क्यों रहूं, सं. रेखा सेठी / रेखा उप्रेती, पृ. 120

[4] संपादक / सहायक संपादक :प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा – स्त्री मुक्ति का सपना, पृ. 29

[5] निर्मला गर्ग, सफ़र के लिए रसद, पृ. 27

[6] नीलेश रघुवंशी, अंतिम पंक्ति में, पृ. 71

[7] नीलेश रघुवंशी, अंतिम पंक्ति में, पृ. 42

[8] कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 64

[9] संपादक : द्वारिकाप्रसाद चारुमित्र, अनभै साँचा, पृ. 39

[10] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 40

[11] विमल कुमार, आउटलुक जनवरी 2011, पृ. 57

[12] निर्मला गर्ग, सफ़र के लिए रसद, पृ. 25

[13] कात्यायनी, सात भाईयों के बीच चम्पा, पृ. 19

[14] गगन गिल, एक दिन लौटेगी लड़की, पृ. 24

[15] नीलेश रघुवंशी, अंतिम पंक्ति में, पृ. 39

[16] ओशो, नारी और क्रांति, पृ. 18

[17] कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में, पृ. 19

[18] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 105

[19] अनामिका, कवि ने कहा, पृ. 121

[20] संपादक / सहायक संपादक :प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा – स्त्री मुक्ति का सपना, पृ. 149

[21] विनय विश्वास, आज की कविता, पृ. 120

[22] सुनीता जैन, बारिश में दिल्ली, पृ. 87

[23] विनय विश्वास, आज की कविता, पृ. 131

[24] ए. अरविंदाक्षन, समकालीन हिंदी कविता, पृ. 118

[25] लीलाधर मंडलोई, काल बाँका तिरछा, पृ. 55

[26] संपादक : आनंद प्रकाश, युग परिबोध, पृ. 17

[27] प्रधान संपादक : डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिंदी भाषा और साहित्य एक समग्र अध्ययन, पृ. 324–325

[28] गोबिन्द प्रसाद, मैं नहीं था लिखते समय, पृ. 70

[29] संपादक : सीमा ओझा, आजकल मार्च 2011, पृ. 24

तृतीय अध्याय
सविता सिंह : काव्य संवेदना का स्वरूप

अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए स्थूल रूप से सविता सिंह की कविताओं का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है –

(क) स्त्री विषयक कविता

(ख) प्रकृति विषयक कविता

(ग) प्रेम विषयक कविता

(घ) अन्य यविषय वस्तु से जुड़ी कविता

(क) स्त्री विषयक कविता

स्त्रियों की स्थिति पर समकालीन समय की कवयित्रियां खूब लिख रही हैं। सभी कववित्रियों ने स्त्री उत्पीड़न के, उसकी पीड़ा के प्रश्नों को उठाया है। इन्हीं कवयित्रियों में कवयित्री के रूप में सविता सिंह ने भी ऐसे प्रश्नों को उठाया है, जिन्हें स्त्री आज तक अपने भीतर दबाती चली आई है। सविता की कविताओं में उठाये गये प्रश्नों को हम अलग–अलग बिन्दु द्वारा अध्ययन कर सकते हैं।

स्त्री मुक्ति की आकांक्षा

सविता सिंह अपनी कविताओं के माध्यम से उस व्यवस्था पर चोट करती हैं, जिसके कारण स्त्रियां आज भी पीछे हैं, उपेक्षित हैं एवं उसका अस्तित्व भी खतरे में है। वे 'परंपरा में' शीर्षक कविता में लिखती हैं–

"दूर तक सदियों से चली आ रही परंपरा में

उल्लास नहीं मेरे लिए

कविता नहीं

शब्द भले ही रोशनी के पर्याय रहे हों औरों के लिए"[1]

हमारे समाज में प्राचीन काल से जो रूढ़िग्रस्त परंपरा चली आ रही है या यों कहें कि परंपरा के नाम पर जो स्थापित रीति–रिवाज़, महोत्सव हैं, इन सभी में पुरुष जाति का ही वर्चस्व दिखाई देता है, स्त्री के लिए (विशेष रूप से) कोई स्थान दिखाई नहीं देता। घर में बेटा पैदा हो तो खुशियां मनाई जाती हैं, दावतें दी जाती हैं, वहीं जब बेटी पैदा होती है तो घर में मातम सा छा जाता है।

सविता सिंह की स्त्री उसी समाज में लड़ रही है, जहां उसके लिए कोई उल्लास नहीं है। यहां तक कि संपूर्ण हिंदी साहितय (वर्तमान साहित्य को छोड़कर) का ब्यौरा लिया जाए तो पूरे साहित्य में स्त्री की दयनीय दशा पर कुछेक कविताएं ही लिखी हुई मिलेंगी, उसके अतिरिक्त जितना भी साहित्य रचा गया वह भले ही समाज में व्याप्त छुआछूत, धर्म आदि से संबंधित वैमनस्य भावना को सही दिशा देने में सक्षम रहा हो परंतु किसी स्त्री के लिए वह कोई दिशा या जागृति पैदा करने में सक्षम नहीं रहा।

इनकी कविताओं में जो स्त्री स्वर मुखरित हुआ है, वह हर उस बंधन को तोड़ता है। जिसमें स्त्री वर्षों से बँधी रही। हमें यह भली–भाँति ज्ञात है कि हमारे समाज में प्राचीन समय से ही स्त्रियों की दशा दयनीय रही है। 'गति' नामक कविता में लिखती है–

"हूं ऐसी गति में

उद्विग्न इतनी कि

तोड़ती हर उस डोर को जिससे हूं बँधी

जगी कई रातों से

थकी

शताब्दियों से कई"[2]

स्त्रियों पर पुरुषों द्वारा अत्याचार करना, उन पर मानसिक दबाव बनाना, घर के भीतर उन्हें बंद करके रखना। न उन्हें कभी बोलने की स्वतंत्रता रही, न कभी अपने विचारों को प्रकट करने की।

'गति' में एक ऐसी स्त्री का वर्णन है जो कि अब हर उस बंधन को तोड़ देना चाहती है, जिसमें उसे जबरन बाँधा गया है। वह जो दिन रात काम के बोझ में दबी रही, जो शताब्दियों से थकी हुई है, आज अर्थात् अब उसके भीतर जागृति आ गई है। वह अब अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गई है।

प्रेम तिवारी लिखते हैं – "सविता की स्त्री किसी के ईशारों पर नहीं जीना चाहती है। अपनी देह और मन पर अपना हक चाहती है। अपनी पुरानी दुनिया से आज वह आज़ाद होना चाहती है। इसीलिए वह उद्विग्न है आजकल, अपनी सारी गोपनीयता को सार्वजनिक कर रही है आज की औरत। और इस तरह तोड़ रही है सदियों की निर्मित अपनी छवि को।"[3]

'अद्वितीय नाच' नामक कविता में ऐसे ही भाव प्रकट हुए हैं–

"उसके शरीर से लगातार कुछ झर रहा था

शायद वे मान्यताएं जिनसे वह निर्मित हुई थी

\+ + + + +

उसके पाँव थके नहीं थे

चेहरे पर एक नयी आभा थी बल्कि

लगता था जैसे इस नाच के साथ वह नयी होती गयी हो।

उसकी आत्मा ने गिरा दी हो

सदियों पुरानी जीर्ण–शीर्ण अपनी काया"[4]

स्त्री देह मुक्ति का प्रश्न

'अद्वितीय नाच' में जहां स्त्री सदियों पुरानी मान्यताओं को त्यागती नज़र आ रही है। वहीं 'नया नाच' नामक कविता में अब भी जो स्त्रियां समाज में पीड़ित हैं, किसी–न–किसी प्रकार की विवशता में जी रही हैं, उनका वर्णन है –

"शायद बहुत पहले तय कर चुका था बाजार

इन लड़कियों की नियति

बना चुका था खुद को एक विशाल नाच घर

जिसमें नाचना था इनको जीवन भर

बेचने थे उसके उत्पाद उन्हीं में तब्दील होकर"[5]

उदय सहाय लिखते हैं कि – "चकले में पहुंचा दिए जाने के बाद पेशा में उतारने से पहले इन लड़कियों को प्रशिक्षण देने का काम शुरू कर दिया जाता है। इन्हें अश्लील साहित्य और फिल्में दिखाई जाती हैं, ग्राहक को रिझाने के गुर सिखाए जाते हैं और इनका मनोबल तोड़ने के लिए इनके साथ बार–बार बलात्कार किया जाता है। इन्हें कई–कई दिन तक कमरे में बंद कर भूखा–प्यासा रखा जाता है। मारा–पीटा जाता है और शरीर को जलती सिगरेटों से दागा जाता है।"[6]

इससे दर्दनाक, दयनीय और पीड़ादायी स्थिति और क्या होगी स्त्री की जहां उसे देवी समझा जाता है वहां उसके साथ इतना घिनौना बर्ताव किया जाता है।

"दिल्ली के जी.बी. रोड के चकले के चंगुल से निकाली गई एक नेपाली लड़की के अनुभवों की दास्तान रोंगटे खड़ी कर देने वाली है।

"जब मैंने सहवास से इंकार किया तो मुझे उस अंधेरे यातना कक्ष में डाल दिया गया जिसे नई लड़कियों का मनोबल तोड़ने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मुझे इस बिना खिड़की वाले, संकरे कमरे में चार दिनों तक भूखा–प्यासा रखा गया। चौथे दिन चकले कि मालकिन का एक गुर्गा आया और मुझे फर्श पर पटककर मेरे सिर को कंकरीट वाली सतह पर तब तक उठा–उठाकर पटकता रहा

जब तक मेरी पेशाब नहीं निकल गई। बाद में मैं बेहोश हो गई। जब मैं होश में आई तो पाया कि मैं नंगी थी और लाल मिर्च में डुबोया हुआ एक बेंत का डंडा मेरे जननांग में ढकेला जा चुका था। फिर कमरे में मैडम (चकले वाली) आई और मुझे बताया कि उसने मेरे लिए 50 हजार रुपये की कीमत चुकाई है और मुझे उसके लिए तब तक काम करना पड़ेगा जब तक पाई–पाई की वसूली न हो जाए।"[7]

'खून और खामोशी' में सविता सिंह ने एक ऐसी ही बच्ची का वर्णन किया है जो इस सुंदर और खूबसूरत लगने वाली दुनिया से एकदम अंजान है, परंतु जब उसके अस्तित्व को चुनौती दी जाती है उसकी आत्मा को ठेस पहुंचायी जाती है तब उस बच्ची के सब सपने चूर–चूर हो जाते हैं–

"दस साल की इस बच्ची के लिए

यह दुनिया संभावनाओं के इंद्रधनुष–सी थी

यही दुनिया उस बच्ची को कैसी अजीब लगी होगी

हजारों संशयों भयानक दर्द से भरी हुई

जिसे उसने महसूस किया होगा मृत्यु की तरह

जब उसे ढकेल दिया होगा किसी पुरुष ने

खून और ख़ामोशी में

सदा के लिए लथपथ"[8]

वहीं अपनी अन्य कविता 'शिल्पी ने कहा' में सविता सिंह शिल्पी के चरित्र के माध्यम से उस पीड़िता की कहानी को बयां करती है जो किसी अत्याचारी के अत्याचार का शिकार होकर मरने के बाद फिर से जागकर अपने बलात्कारियों से कहती हैं–

"तुम सबने सिर्फ मेरा शरीर नष्ट किया है

मुझे नहीं

मैं जीवित रहूंगी सदा प्रेम करने वालों की यादों में

दुख बनकर

पिता के कलेजे में प्रतिशोध बनकर

बहन के मन में डर की तरह

मां की आँखों में आँसू होकर

आक्रोश बनकर

लाखों करोड़ों दूसरी लड़कयों के हौंसलों में

वैसे भी अब नहीं बच सकता ज़्यादा दिन बलात्कारी

हर जगह रोती कलपती स्त्रियां उठा रहीं हैं अस्त्र"[9]

अंतिम दो पंक्तियों में स्त्री के भीतर एक नई चेतना, नई जागृति और क्रांति का जो स्वर मुखरित हुआ है, वह स्त्री के भीतर जगा आत्मविश्वास है, स्त्री को उसकी शक्ति का ज्ञान हुआ है, वह अब डरने वाली नहीं अपितु अब वह अपने हाथों में हथियार उठा चुकी है।

स्त्री स्वायत्तता का प्रश्न

सविता की स्त्री अब किसी को अपने ऊपर राज नहीं करने देना चाहती –

"मन पर न लूँ कोई बोझ

+ + + + +

मन पर न करने दूँ राज

किसी देवता को

धर्म में नतमस्तक होने को तैयार

किसी सुख को जो हो दुख का ही पर्याय"[10]

स्त्री अब अपने मन पर किसी देवता अर्थात् पति परमेश्वर को राज नहीं करने देना चाहती। धार्मिक आचार की ओड़ में अब किसी ऐसी परंपरा को नहीं मानना चाहती जिसमें शोषण छिपा हो। धर्म के नाम पर सती, रीति–रिवाज़ के नाम पर विवाह के पश्चात् पुरुष के घर जाना, परंपरा के नाम पर पर्दा पहनाना आदि आडंबरों में सुखानुभूति नहीं दुखानुभूति होती है।

प्राचीन काल में देखें तो तब से अब तक का समाज काफी बदल गया है। कहने को स्त्री को समान अधिकार दिये जा रहे हैं। परंतु स्थिति अभी पूरी तरह से नहीं सुधरी है। आज भी बेटी पैदा होते ही उसे मार दिया जाता है, या पैदा होने से पहले ही भ्रूण हत्या हो जाती है। सविता सिंह व्यंग्य करती हुई लिखती हैं–

"नमन करूँ इस देश को

जहां मार दी जाती हैं हर रोज़

ढेर सारी औरतें

जहां एक औरत का जीवित रहना

एक चमत्कार की तरह है

\+ + + + +

नमन करूँ उस मां को

अपनी बेटियों को जनती हुई जो

रोती है 'अब क्या होगा उनका ईश्वर

इस दुनिया में'"[11]

राजेन्द्र राजन लिखते हैं – "सविता सिंह के यहां स्त्री–मुक्ति की यह आकांक्षा बड़ी प्रबल है। पुरुषों द्वारा शासित इस दुनिया में वह हमेशा 'किसकी औरत' के रूप में पूछी और पहचानी जाती है।"[12]

'मैं किसकी औरत हूं' कविता में नई व पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों के बीच का जो संवाद है, वह पुराने समय से वर्तमान समय के बदलाव को, या कहें स्त्री की बदलती दुनिया को रेखांकित करते हैं। एक सत्तर–पचहत्तर साल की बूढ़ी औरत रेलगाड़ी में बैठी एक अन्य स्त्री से पूछती है–

"मैं किसकी औरत हूं
कौन है मेरा परमेश्वर
किसे पाँव दबाती हूं
किसका दिया खाती हूं
किसकी मार सहती हूं"[13]

इस पर अन्य स्त्री जवाब कुछ इस प्रकार से देती है

"सोचकर बहुत मैंने कहा उससे
'मैं किसी की औरत नहीं हूं
मैं अपनी औरत हूं
अपना खाती हूं
जब जी चाहता है तब खाती हूं
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा कोई परमेश्वर नहीं"[14]

अपने घर की तलाश

हमारे समाज का ढाँचा कुछ इस प्रकार से तैयार किया गया है कि उसे एकदम से नहीं बदला जा सकता। परंपरा के नाम पर न जाने कितने ऐसे निमय बना दिये गये हैं जो पुरुषों पर नहीं, केवल स्त्री पर ही लागू होते हैं, कुछ पुरुष अपवादरूप में जरूर मिल जायेंगे परंतु सभी नहीं। हमारे समाज में एक प्रथा यह है

कि विवाह होने के बाद लड़की को ही बहू बनकर ससुराल जाना होता है। उसे बचपन से ही अगले घर जाने की नसीहतें दी जाती हैं, जब अगले घर पहुंच जाती है तो कहा जाता है, अपने घर में कुछ भी सीखकर नहीं आई। कहा जाये तो एक स्त्री के पास दो–दो घर है एक मायका और दूसरा ससुराल। परंतु दोनों घरों में क्या वास्तव में उसका अपना कोई घर है? इसी सवाल को सविता सिंह ने अपनी कविता 'विमला की यात्रा' में कुछ यों रखा है जहां विमला अपने पति की मृत्यु के बाद अपने उस घर जा रही है जहां से कभी अपने पति के घर को अपना घर समझकर आई थी–

"उसे जाना है आज शाम चार बजे रेलगाड़ी से

जाना है पति के घर से इस बार पिता के घर

एक घर से दूसरे घर जाते हैं वही

नहीं होता जिनका अपना कोई घर

+ + + + +

हे ईश्वर हों जीवन में मेरे ऐसी यात्राएं अब कम

हो मेरा एक ही जीवन

एक अपना घर

जैसे है मेरी एक आत्मा"[15]

"स्त्रियां अपने जीवन और भावनाओं में उतनी ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ज़रूरत महसूस करती हैं, जितनी की पुरुष। लेकिन बचपन से ही उन्हें इस ज़रूरत के दमन की आदत डाल दी जाती है।"[16]

हमारे समाज विशेषतः भारतीय समाज में स्त्री की दशा ऐसी है कि उसे बचपन से ही कमजोर होने का एहसास दिलाया जाता है। बचपन से ही अगले घर जाने की सीख देना, तेज आवाज़ में बात नहीं करनी जैसी हिदायतें दी जाती हैं।

और उसके हर काम में ऐसे करना है वैसे नहीं करना। वैसे करना है ऐसे नहीं करना आदि रोक–टोक बचपन से ही लगाई जाती है।

"लड़कियों की स्थिति भयावह है। जन्म से विवाह तक लड़कियों को पता नहीं है कि उनका अपना क्या है। लड़की महसूस करती है कि उसने जहां कदम रखा, हाथ रखा वहां से उसे चले जाना है। विवाह से पहले का अस्तित्व उसके लिए दूसरे के घर जाने की एक तैयारी है।"[17]

घरेलू महिलाओं की स्थिति

सविता सिंह ने अपनी कविताओं में स्त्री के भिन्न–भिन्न पक्षों को भली–भाँति उतारा है। सविता सिंह आम घरेलू महिला की दिनचर्या का वर्णन बखूबी करती हैं। 'सच का दर्पण' नामक कविता में वे लिखती हैं–

"बहुत सुबह जग जाती हैं मेरे शहर की औरते
वे जगी रहती हैं नींद में भी
+ + + + +
उनके हाथ मज़दूरों की तरह काम करते हैं
बनी रहती हैं फिर भी अभिजात संभ्रांत वे
नाश्ता बनाती हैं सुबह–सुबह
भेजती हैं मर्दों को दफ्तर
बच्चों को स्कूल
फिर बँध जाती हैं पालतू–सी
सुखी–दुखी अपने घरों से
दोपहर कभी उच्छृंखल नहीं लगती उन्हें
मनहूसियत भले घेर ले पूरे दिन को'[18]

स्त्रियां मानसिक रूप से इस कदर तैयार हो चुकी हैं कि चाहे घर में वे कितनी ही यातना सहें, कष्ट सहें वे नहा–धोकर एकदम ऐसे तैयार होकर रहती हैं जैसे उन्हें किसी प्रकार की कोई परेशानी कोई कष्ट न हो। सुबह से लेकर शाम तक पति, बच्चों, घर–परिवार वालों की सेवा करना ही अपना धर्म अपना कर्म मानती हैं। परंतु आज का युग बदला है, आज कुछ स्त्रियां ऐसी भी हैं, जो इन सब धर्म–कर्म को झंझट मानती हैं तथा परिवार से ज़्यादा अपने ऊपर ध्यान देती हैं। ऐसा केवल उच्च वर्ग के परिवारों में रह रही महिलाओं में ही देखने को मिलता है, वरना मध्यवर्ग की औरत आज भी उसी चक्की में पिस रही है और निम्नवर्ग की स्त्री की स्थिति तो उससे भी बदतर हो रही है। इसलिए कवयित्री लिखती हैं–

"रोती विलाप करती स्त्रियां

करती हैं शापित पूरे इतिहास को

जिसमें उनके लिए अंधकार का मरुस्थल बिछा है"[19]

सविता की स्त्री अब पुराने इतिहास को बरकरार नहीं रखना चाहती जहां उसके लिए कभी कोई प्रकाश –किरण उज्ज्वलित नहीं हुई। बल्कि स्याह अंधेरा उसके जीवन में रहा नहीं अपितु भरा गया। आज ये स्त्रियां अपने उस इतिहास को देखकर रोती हैं, उसे शापित करती हैं।

"सविता की कविताओं में स्त्री होने का संकट विचारों के संघर्ष में खुल रहा है। न वहां आत्मदया है, न सामाजिक अभिशाप की कभी न खत्म होने वाली बेड़ियां, बल्कि एक सजग आत्मालोचन है, स्त्री की दुर्धर्ष 'सरवाइवल' शक्ति में पूरा विश्वास है। उनकी कविताएं उसी स्त्री शक्ति की पहचान करती हैं जहां केवल विरुद्धों का सामंजस्य ही नहीं होता, बल्कि सजग टकराहट होती है। उनकी औरत अपने लिए रास्ते बनाती हैं, अपनी मंजिलें खुद चुनती दिखाई पड़ती है।"[20]

सविता की रोती विलाप करती स्त्रियां लीलाधर मंडलोई के यहां भी देखने को मिलती है। परंतु ये स्त्रियां युद्ध के समय और उसके बाद रोती नजर आ रही हैं–

"युद्ध के समय

और उसके बाद

बरसों बरस

सुनाई पड़ते हैं विलाप

विलाप में

हर कहीं

होती हैं स्त्रियां..."[21]

हर कहीं स्त्रियां ही क्यों हैं विलाप में पुरुष क्यों नहीं ? क्योंकि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा बन गया है कि वे किसी दुर्घटना किसी भी प्रकार की हानि को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर सकतीं। उनका हृदय कोमल है, और कोमल हृदय दु:ख और पीड़ा में फूंट पड़ता है।

"जिसे आज 'स्त्री का स्वभाव' कहा जाता है, वह एक नकली चीज़ है, और कुछ दिशाओं में बाध्यतापूर्ण दमन और कुछ दिशाओं में अप्राकृतिक फैलाव का परिणाम है।"[22]

वहीं एक स्त्री ऐसी भी है जो अपने पति की मार सहने के बाद भी अपने घर को पूरी तल्लीनता के साथ साज–सँवार रही है, उसे कदम–कदम पर अपमान सहने को मिला है, सदा से उसने अपने आपको हर खुशी हर चीज़ से वंचित पाया है। 'हृदयहीन दुनिया' कविता में एक ऐसी ही स्त्री का वर्णन है–

"घाव लिये कलेजे में

अपमान भी यदा–कदा

प्रायः देर तक जगी तुम

खाया सबके बाद बचा–खुचा खाना

जगीं सबसे पहले

किया साफ़ घर–द्वार

फूल–लताएं लगायीं

ख़ाली से इस बँगले को किया आबाद"[23]

"भारतीय स्त्री की दशा–दिशा, सोच और समर्पण पर विचार करने पर हम पाते हैं – स्त्री मां की ममता का आँचल, बहन की राखी का बंधन और दांपत्य का रिश्ता ही नहीं निभाती बल्कि वह शक्ति है, जो परिवार को संजोकर रखती हैं। वह दुःख सहते–सहते बेचारी बन जाती है तो दुःखों की सीमा लाँघ देने पर काली का अवतार ले लेती है। उसके हृदय में सागर–सी गहराई जैसा प्रेम है।"[24]

स्त्री अस्मिता का प्रश्न

इतनी पीड़ा, इतने अवसाद, नीरस जीवन में भी आशा का संचार, कुछ भी अपनी इच्छा से नहीं मिला, फिर भी एक औरत लगातार संघर्ष करती हुई जीती चली आ रही है। वह अपने आप को भूल गई है। उसे नहीं पता उसका नाम क्या है ? वह कहां जन्मी है और कहां उसने प्राण छोड़े हैं। 'परिचय' कविता में सविता सिंह एक ऐसी ही स्त्री का वर्णन कर रही है–

"कौन हूं

क्या है मेरा कोई नाम

या फिर एक देश

धर्म शायद या नहीं कोई

किस शताब्दी में जन्मी मैं

मरी कब"[25]

और जब उसे इसका जवाब नहीं मिलता तब वह कहती है कि मुझे अब खुद को पाना है मेरी अब और कोई इच्छा नहीं। 'स्त्री होने का संकट' में एक स्त्री खुद को पाना चाहती है–

"अब न जीतने की कोई इच्छा है

न हारने का भय

बस खुद को पाने की उत्कंठा है"[26]

"बेहद गहन अर्थ में सविता की कविता स्त्रीत्व की राजनीति की कविता है जो अपने स्वत्व और पहचान की स्थापना चाहने से आगे उसे साक्षात संभव करती है।"[27]

आत्मनिर्भरता का प्रश्न

सविता सिंह जहां अपनी कविताओं में स्त्री के मर्म उसकी वेदना, उसकी टीस को पहचान कर व्यक्त करती है वहीं वह एक स्त्री की भी कामना करती है। जो पूर्ण रूप से स्वच्छंद होकर जीवन यापन करती हो। कवयित्री को ऐसी स्त्री पसंद नहीं जो पुरुषों के कदमों में झुकने को तैयार रहती हो।

'मुझे वह स्त्री पसंद है' में वे लिखती हैं–

"मुझे वह स्त्री पसन्द नहीं

जिसकी जीभ लटपटाती है पुरुषों से बात करने में

जिसका कलेजा काँपता है उनकी मार के डर से

जो झुककर उठाती है उनके जूते"

\+ + + + +

मुझे वह स्त्री पसंद है जो कहती है अपनी बात साफ़–साफ़

बेझिझक जितना कहना है बस उतना

निर्भीक जो करती है अपने काम

नहीं डरती सोचती हुई आत्मनिर्भरता पर अपने"[28]

यहां कवयित्री समाज में ऐसी स्त्रियों की उपस्थिति चाहती है जो उन पर होने वाले अन्याय अत्याचार का खुलकर विरोध करे। जो आत्मनिर्भर हो, निर्भीक हो।

विष्णु नागर लिखते हैं कि – "सविता सिंह की कविता यह एहसास सबसे पहले कराती है कि ये एक स्वाधीन होती स्त्री की कविता है न कि ठेठ हिंदी के ठाठ की कविता है। लेकिन यह स्वाधीन स्त्री भारतीय समाज की स्थिति से बेखबर नहीं है। उसी में बन रही स्त्री है। इसलिए सविता सिंह अपनी कविता में बहुत सी स्त्रियों को चीह्नती हैं जो उनकी कविता की स्त्री की स्थिति में नहीं है, जो संघर्ष और पीड़ा की विभिन्न स्थितियों से गुजर रही हैं।"[29]

स्त्रियों का आत्मनिर्भर होना कुछ पुरुषों को खल रहा है। वे उसकी आत्मनिर्भरता पर कटाक्ष करते हैं। 'मुक्ति के फायदे' कविता में देखिए–

"कुछ लोग समझ रहे हैं

नारी मुक्ति के हैं कुछ फ़ायदे भी

कहते हैं देखिये किस तरह ढो रही है औरते

पहले से आठगुणा भार

पैदा कर रही है पाल रही हैं बच्चे अकेले ही

चला रही देश और समाज

कमा रही हैं खा रहीं है अपना

मुक्त कर चुकी हैं पुरुषों को अपने से पहले ही।"[30]

(ख) प्रकृति विषयक कविता

सविता सिंह का काव्य संसार जहां स्त्री–चेतना के महत्त्वपूर्ण पक्ष को उठाता है वहीं वह प्रकृति से भी संबंध स्थापित करता नज़र आता है। उनकी कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण है तो कहीं प्रकृति का आलंबन रूप है न इसी प्रकार भिन्न–भिन्न धरातल पर प्रकृति की छटा को उकेरा गया है। इसके अतिरिक्त प्रेमानुभूति विषयक कविता भी उनके कविता संसार में स्थान पाती दिखाई पड़ती है। सर्वप्रथम हम उनकी कुछ प्रकृति विषयक कविताओं पर विचार करते हैं–

सविता सिंह की कविताओं में प्रकृति निम्न रूप में मिलती है–

(क) आलंबन रूप में

(ख) उद्दीपन रूप में

(ग) संवेदनात्मक रूप में

(घ) मानवीकरण रूप में

(क) आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण – जहां प्रकृति को आलंबन बनाकर उसके नाना रूपों का चित्रण किया जाता है, वहां आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण होता है। सविता सिंह की कविताओं में आलंबन रूप कुछ ऐसा उभर कर आता है–

"शाम ढल चुकी थी
रात पसार रही थी अपना आँचल
आसमान से नीला प्रकाश झर रहा था
सामने का एक पेड़ उसमें नहा रहा था
तभी उसकी एक डाल हौले–से हिली थी
संभव था उसे हवा ने हिलाया हो"[31]

यहां साँयकाल पश्चात् जो प्रकृति का मनमोहक चित्रण किया गया है वह आँखों के समक्ष साक्षात् बिंब बनकर आता है।

अपनी कविता 'बचा हुआ स्पर्श' में प्रकृति का वर्णन कुछ यों कवयित्री करती नजर आती हैं–

"शाम रात के आगोश में जा चुकी थी

बसंती हवा कचनार के फूलों को हिला रही थी

बगल के ख़ाली मैदान में ऊँची–ऊँची घास डोल रही थी

मानों खड़ी रात का स्वागत कर रही हो"[32]

(ख) उद्दीपन रूप में – जहां प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती है वहां उद्दीप्न रूप में प्रकृति चित्रण होता है। यह प्रकृति संयोग में सुख व वियोग में दुःख को उद्दीप्त करती है –

"स्थिर जलवाले तालाब के किनारे

वहीं जहां आम के घने पेड़ों की छाया है

मंद–मंद हवा जहां बहती है शीतलता लिये

वहीं जहां हम मिले थे पिछले जन्मों में"[33]

(ग) संवेदनात्मक रूप में – प्रकृति जहां मानव के साथ संवेदना व्यक्त करती हुई मानव की प्रसन्नता एवं ह्रास–उल्लास के क्षणों में स्वयं उल्लास व्यक्त करती है तथा दुःख के क्षणों में स्वयं रुदन करती जान पड़ती है, वहां संवेदनात्मक रूप में प्रकृति चित्रण माना जाता है 'इस जंगल में' कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"एक चुप में खिले हैं

इतने सारे जंगली

पीले बैंगनी फूल

पेड़ों के आड़े–तिरछे तनों से

सटी फैली है वैसी ही वक्र

घुमी हुई इतनी सारी टहनियां

रोयें रोयें से जिनके चिपके हैं नामालूम

कितने फल कितने पत्ते

बैठी उन पर चिड़ियां इसी नीरवता में

साथ–साथ डोल रही है

हवा गुम है गंभीर भी

समझती हर जीवन का अकेलापन इस जंगल में"[34]

(घ) मानवीकरण रूप में – सविता सिंह ने अपनी कविता 'दृश्य' में प्रकृति को मानव की भाँति आँख मींचते और चेहरा ऊँचा करे चित्रित किया है–

"झाड़ देती है पंख तितलियां

झड़ते है जैसे आसमान के अपने ही रंग

वातावरण बदलता है

विश्राम करते पक्षी डैने फैलाते हैं

चेहरे ऊँचा करे हैं पेड़

आँखें मींचती है घास"[35]

(ख) प्रेम विषयक कविता – प्रेम कई प्रकार का होता है, मनुष्य जाति इस बात से भली–भाँति परिचित है कि माता–पिता से, भाई–बहन से, चाचा–चाची, मामा–मामी, बुआ–फूफा, दादा–दादी, नाना–नानी आदि सभी से प्रेम होता है परंतु एक प्रेम होता है जो विवाह पूर्व किसी युवक युवती के बीच होता है, वहीं एक प्रेम

ऐसा भी है जो विवाह पश्चात् पति–पत्नी में होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम शाश्वत है। उसका रूप प्रत्येक संबंध में अलग–अलग होता है, वहीं उसके प्रकटीकरण के तरीके भी अलग–अलग होते हैं।

सविता सिंह की कविताओं में प्रेम–प्रसंग के भिन्न–भिन्न स्तर हमको दिखलाई पड़ते हैं। वहीं उनके यहां कविता में प्रेम को लेकर एक अलग ही बुनावट है – 'असफल होता प्रेम' में सविता सिंह एक खोते हुए प्रेम का वर्णन कर रही है जहां उनका प्रिय अब नहीं आने वाला है –

"प्रेम असफल होने वाला है

आज दोपहर बाद नहीं आएगा

प्राणों से भी प्रिय मेरा कोई अपना"[36]

'प्रेम प्रसंग' नामक कविता में वर्णन मात्र के बाद याद करना रह जाता है। किसी समय में कोई प्रेम–प्रसंग रहा होगा परंतु आज उसको केवल कोई स्मरण कर रहा है–

"उसकी याद में गर्दन झुकाये

बेबस उसी की गोद में

बैठी है वह

हौले से वह चूमता है उसके कान

चाँदनी रात यकायक गरम हे जाती है

+ + + + +

याद करती फिर गरम चाँदनी रातों को

और उस स्वांग को जो है इस समय का 'प्रेम–प्रसंग"[37]

यहां पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम में धोखा खाने के बाद उन लम्हों की याद की टीस है जो कभी संयोगावस्था में बीते थे।

सविता सिंह की कविताओं में प्रेम का संयोग, वियोग वर्णन नहीं होकर भी है और होकर भी नहीं। वे प्रेम से पहले और बाद की स्थिति के बारे में बतलाती हैं; प्रेम के बारे में बतलाती हैं। उनकी एक कविता भी है 'प्रेम के बारे में' सिल्विया प्लाथ को संबोधित करते हुए कहती हैं–

"यहां दूर–दूर तक कोई पुरुष तुम्हें

इतना बेबस नहीं कर सकेगा अपनी क्रूरता से

कि तुम नष्ट हो जाओ

अपने प्रेम से नहीं मार सकेगा वह तुम्हें दोबारा"[38]

किस प्रकार से लोग प्रेम की ओट में अत्याचार करते हैं। इसका वर्णन कवयित्री ने उपरोक्त पद्यांश में किया है। 'सुन्दर बातें' कविता में किस प्रकार प्रणय भावना का बीच अंकुरित दो अजनबी लोगों में किस प्रकार से हुआ है इसका वर्णन है–

"जब हम मिले थे

वह समय भी अजीब था

शहर में दंगा था

+ + + + +

हम एक दूसरे को पहले नहीं जानते थे

लेकिन इस पल हम एक–दूसरे ही को जान रहे थे

तभी तो उसने मेरे बालों को पीछे समेटकर

गुलाबी रिबन से बाँधा था"[39]

इस प्रकार से सविता सिंह द्वारा रचित ये कविताएं प्रेम–कविताएं तो नहीं परंतु उसके बेहद् करीब पहुंचने वाली कविताएं अवश्य हैं जहां प्रेम का मतलब केवल प्रेमालाप न होकर, उस सच्चाई तक पहुंचने की कोशिश है जहां प्रेम की संकल्पनाएं उद्दीप्त होती हैं। जहां प्रेम की अनुभूति के बाद की टीस महसूस होती है, यह टीस किसी के छोड़ दिये जाने पर है, तो किसी के लौट के न आने पर है।

(ग) अन्य विषय वस्तु से जुड़ी कविता

कवयित्री सविता सिंह द्वारा लिखित काव्य में भिन्न–भिन्न विषय, परिप्रेक्ष्य, परिस्थिति आदि महत्त्वपूर्ण बिंदु दृष्टव्य होते हैं वे 'पिछली कविताओं की दुनिया' के बारे में बताती हैं–

"पिछली कविताओं में थी

संघर्ष की एक दुनिया

सच की खोज में मिटती हुई"[40]

सविता सिंह जहां पिछली कविताओं की दुनिया की बात करती हैं वहीं अपनी कविताओं की दुनिया में उन्होंने 'मां' पर भी रचना की है। 'मां' का सृष्टि में सबसे ऊँचा स्थान है। बेटियों के सबसे ज़्यादा करीब मां ही होती है। सविता सिंह 'पुराना संदूक' में कुछ इस प्रकार से मां की यादों को सहेजकर लिखती हैं–

"खोलती है मां पुराना संदूक

निकालती है उसमें से

ज़री की साड़ियां लहँगे रेशम के

लकड़ी के फ्रेम में मढ़े पिता के साथ

खिंचवाये श्वेत–श्याम चित्र

बक्से से निकलती है भीनी–सी कोई महक"[41]

सविता की इस कविता को पढ़ते ही रजनी अनुरागी की एक कविता याद आ गई 'मां का बक्सा' –

"उसमें थी

बेटों को बालपने में पहनाई काले धागे की तगड़ी

रंग–बिरंगे झुनझुने लोहे की तार पर कूदता फिसलता बंदर

छोटी–छोटी कुछ चूं–चूं चप्पलें, कुछ छोटे–छोटे स्वेटर

मोजे, दस्ताने, छठी के कपड़े, काजल की सूखी डिब्बी

कुछ पीतल के घुँघरु, पुराने ब्लैक एंड व्हाईट फोटो

कुछ पुरानी नोटबुक, फटी–कटी पीली जर्जर किताबें

कुछे टूटे खिलौने लकड़ी के"[42]

वास्तव में यह मां की चिन्ता है अपने बच्चों के प्रति, उसका प्यार है जिसे सहेजकर उसने संदूक में, बक्से में रखा हुआ है। पुरानी यादे हैं जिनको जीवित रखा हुआ है।

'मां के पाँव', 'माँ की याचना', 'माँ का चेहरा' ये कविताएं मां को समर्पित कविताएं हैं। इसके अतिरिक्त उनका अन्य पक्ष भी हमारे समक्ष उभकर आता है जहां वे देश–विभाजन के समय जो लोगों की, स्त्रियों की दुर्दशा हुई थी उसका वर्णन अपनी कविता 'देश के मानचित्र पर' में करती है–

"एक तरफ ढेर जली लाशों का

एक तरफ टंगा हुआ

पेट चीरकर मारा गया अजन्मा बच्चा

एक तरफ पथरा गयी आँखें कंचों सी

देखे थे जिन्होंने बलात्कार बहनों बेटियों माशूकाओं के"[43]

सविता सिंह ने जहां 'मां' पर कविता लिखी है वहीं वे पिता के लिए भी कविता लिखती हैं। 'एहसानमंद हूं पिता' में वे लिखती हैं–

"एहसानमंद हूं पिता

कि पढ़ाया लिखाया मुझे इतना

बना दिया किसी लायक़ कि जी सकूँ निर्भय इस संसार में

झोंका नहीं जीवन की आग में जबरन

\+ + + + +

एहसानमंद हूं कि इंतज़ार नहीं किया

मेरे जीतने और लौटने का

मसरूफ रहे अपने दूसरे कामों में"[44]

यहां पर पिता के प्रति थोड़ा गुस्सा हैं, हृदय के भीतर विद्यमान जो चुभन है वह बाहर निकलती दिखाई पड़ रही है।

कवयित्री अपनी 'अन्त' नामक कविता में एक किसान परिवार का वर्णन कर रही हैं, जहां पर एक किसान अपने जीवन में बदहाली के चलते, परिवार समेत मृत्यु को गले लगा लेना चाहता है। इस कविता में बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है–

"कर्नाटक के एक अँधेरे गांव में

जीवन का खेल समाप्त करने की तैयारी

कर रहा है एक किसान परिवार

जमीन पर चटाई डाली जा रही है

कटोरे में ज़हर घोला जा रहा है

+ + + + +

सब देखते हैं एक दूसरे को सूनी आँखों से

फिर एक रूलाई फूटती है किसान के गले से"[45]

और फिर उसके बाद वे सभी मौत के आग़ोश में चले जाते हैं–

"एक शान्ति छा जाती है फिर हर तरफ

सिर्फ देह तड़पती है कुछ देर तक"[46]

ऐसी दशा अधिकांश किसान परिवारों के साथ होती है। जो किसान अपना हाड–माँस गला के, पसीना बहा के अन्न उपजाता है अन्त में उसकी दशा ऐसी होती है। यह अपने आप में पूरी व्यवस्था व्यंग्य हैं, जहां बड़े–बड़े वादे किये जाते हैं, योजनाएं बनाई जाती हैं। वहां पर ऐसी स्थिति उत्पन्न होना अपने आप में शर्म की बात है।

कविता के माध्यम से जिन महत्त्वपूर्ण विषयों को उठाया गया है, वे सराहनीय हैं। और शायद इसी कारण ये कवयित्री कविता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है। 'कृतज्ञ हूं मेरी कविता' में लिखती हैं–

"कृतज्ञ हूं मेरी कविता

कि जी सकती हूं अपना सौन्दर्य तुममें

कृतज्ञ हूं कि तुम मुझे जानती हो जैसी मैं हूं

अपनी देह और आत्मा में एक जैसी"[47]

आगे वे लिखती हैं 'श्रम से कमाये शब्द' अर्थात् अपनी इस कविता में वे अपने काव्य–रचना के उस पक्ष से रू–ब–रू करा रही है। जहां पर वे अपनी कविता लिखते समय जो शब्दों का चयन करती अर्थात् जो वाक्य रचना करती हैं

वह किसी क्रूरता और चालाकी के खेल को अपने भीतर सँजोकर नहीं रखना चाहते–

"हमारे शब्द

श्रम से कमाये गये

यूँ न किये जायेंगे खर्च

क्रूरता और चालाकी के खेल जारी रखने के लिए"[48]

इसी पकार से 'कविता का जीवन', 'कहां लिये जा रही हो मुझे मेरी कविता', 'जब लिख नहीं पाती', 'अपनी भाषा के लिये', 'अवसाद में कविता' आदि कविताओं में इनकी रचना प्रक्रिया के विविध आयाम दिखाई देते हैं।

इनकी कविताओं में नींद, रात, अंधेरा, सपने जैसे काव्य वैशिष्टय बनाने वाले सौपान भी हैं जैसे इनकी कुछ कविताओं के शीर्षक हैं – 'अँधेरे मेरे हिससे के', 'एक अँधेरा है जो सालता है', 'कहां है अँधकार अब', 'नया अँधेरा', 'सपने की औरत', 'नींद में रुदन', 'रात नींद सपने और स्त्री', 'रुथ का सपना', 'देर रात में', 'दोपहर के सपने', 'नींद का रंग', 'कोई था और नींद थी', 'भटकते सपने', 'एक दृश्य स्वप्न सा', 'मध्य रात्रि' में आदि कविताओं में जीवन में आने–जाने वाले सुख–दुख आदि का वर्णन है। जहां पर एक औरत के जीवन के विभिन्न पक्षों को इन कविताओं में वाणी मिली है।

वहीं पूरे दिन चक्र 'सुबह', 'शाम', 'दोपहर', 'रात' पर भी कविताएं लिखी गई है।

संदर्भ

[1] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 10

[2] वही, पृ. 14

[3] नई धारा, जून–जुलाई, 2008

[4] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 18

[5] वही, पृ. 45

[6] सं./सहा. संपा. प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 238

[7] वही, पृ. 238

[8] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 101

[9] वही, पृ. 102

[10] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 19

[11] वही, पृ. 45

[12] हिंदुस्तान, 1 जुलाई, 2001

[13] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 40

[14] वही, पृ. 40

[15] वही, पृ. 38–39

[16] जॉन स्टुअर्ट मिल (अनुवाद–युगांक धीर) स्त्री और पराधीनता, पृ. 102

[17] युग परिबोध, सितम्बर 2011, पृ. 17

[18] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 35

[19] वही, पृ. 33

[20] नया ज्ञानोदय, फरवरी 2007, पृ. 107

[21] लीलाधर मंडलोई, काल बाँका तिरछा, पृ. 66

[22] जॉन स्टुअर्ट मिल (अनुवाद–युगांक धीर) स्त्री और पराधीनता,, पृ. 32

[23] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 42

[24] आजकल, मार्च 2011, पृ. 46

[25] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 100

[26] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 17

[27] जनसत्ता, 17 जून 2001

[28] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 56

[29] विष्णु नागर कविता के साथ–साथ, पृ. 65

[30] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 54

[31] वही, पृ. 62

[32] वही, पृ. 63

[33] वही, पृ. 58

[34] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 87

[35] वही, पृ. 90

[36] वही, पृ. 93

[37] वही, पृ. 98

[38] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 27

[39] वही, पृ. 133

[40] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 22

[41] वही, पृ. 50

[42] मगहर, जनवरी–मार्च, 2012

[43] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 105

[44] वही, पृ. 98

[45] वही, पृ. 128

[46] वही, पृ. 128

[47] वही, पृ. 92

[48] वही, पृ. 118

चतुर्थ अध्याय
सविता सिंह : काव्य संवेदना का भाषिक विधान

किसी कृति को भाषिक दृष्टि से अर्थात् उसका भाषिक विधान कैसा है, कैसा नहीं। यह कुछ आवयक बिंदु, भाषा की मूलभूत ईकाइयों द्वारा जाना समझा जा सकता है। मान लीजिए आत्मा है किसी चीज़ की उसका रूप क्या है ? बाह्य आकार क्या है? भाषिक विधान में हम उन बातों का अध्ययन करते हैं जो किसी कवि या रचनाकार द्वारा उसकी रचना में प्रयुक्त की गई हैं या स्वाभाविक तौर पर आ गई हैं।

किसी कविता में कोई बात कही गई है उसको चमत्कृत करने के लिए हम उसको अलंकृत करते हैं। इस अलंकरण में भाषा बहुत हद तक साथ देती है। अनुभूति को व्यक्त करने का माध्यम शब्द है कभी हम उसे प्रतीकात्मक कहते हैं कभी बिंब का सहारा लेते हैं। मिथक, मुहावरे ये सभी भाषा के ही विधान है, भाषा के उपांग हैं, उपकरण है। कैसे कहा गया है ये शिल्प विधान है, भाषिक विधान है।

भाषा में आक्रोश, संगीतात्मकता, लय, मूड, भाषिक शब्दावली, शब्द के प्रयोग, बिंबात्मकता, भाषा संकेत, तुकों का आग्रह, वक्तव्य, भाषा सपाट है या टेढ़ापन है, सांकेतिकता है या नहीं। वाक्य लंबे तीव्र गति वाले हैं या नहीं। सभी उपांग भाषा विधान के अंतर्गत आते हैं। समकालीन हिंदी कविता मुक्त छंद में लिखी जा रही है। सविता सिंह की कविताएं भी मुक्त छंद में लिखी गई है। ये कविताएं संवेदनात्मक धरातल पर तो सटीक अर्थ प्रकट करती हैं एवं भाषिक धरातल पर भी नया आयाम हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है।

डॉ. ज्यातिष जोशी लिखते हैं – "...सविता सिंह की कविताएं गहरे बौद्धिक विमर्श के साथ–साथ सघन संवेदनाओं की कविताएं हैं, स्त्री जीवन के बोध और विवेक के प्रचलित चौखटों का अतिक्रमण एक कवयित्री ने यहां जो काव्यजगत

प्रस्तुत किया है वह कई अर्थों में कविता के नये व्याकरण की निर्मिति है, इधर की कविता बहुत बदली है, उसके मुहावरे, भाषिक विधान, बिम्ब और लाधव के कई रूपों को प्रस्तुत करती कवयित्री जिस सहजता से व्यंग्य और विनोद को साधती है; उसे भी देखा जा सकता है – खुशी–खुशी चल रहा है सारा अत्याचार/अपने सिर उतारकर/पेश कर रहे हैं। लोग खुशी–खुशी।"[1]

भाषा शिल्प की दृष्टि से सविता सिंह की कविताओं का विश्लेषण हम भाषा के भिन्न–भिन्न उपकरणों द्वारा करने का प्रयास करेंगे।

बिंब

बिंब भावगर्भित शब्द चित्र होता है। कवि अपनी कविता में इस चमत्कार से हमारे समक्ष एक तस्वीर बनाकर प्रस्तुत करता है।

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार – "किसी वस्तु, घटना या दृश्य का कल्पनागत अप्रस्तुत रूप बिम्ब कहलाताहै। प्रायः हम किसी बात या प्रसंग को समझाने या उसके प्रभाव को हृदयंगम कराने के लिए इन्हीं कल्पनागत अप्रस्तुत रूपों का प्रयोग करते हैं। समझाने और हृदयंगम कराने की यह रीति बिम्बात्मक अभिव्यक्ति कहलाती है।"[2]

विद्वानों ने बिंबों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया है। सामान्यतः बिंब के निम्नलिखित प्रकार प्रमुख रूप से स्वीकार किये गए हैं –

(क) दृश्य बिंब

(ख) श्रव्य बिंब

(ग) स्पर्श बिंब

(घ) आस्वाद्य बिंब

(ड.) गंध बिंब

(क) दृश्य विंब – काव्य में दृश्य–बिंबों की संख्या अधिक होती है और अन्य बिंबों को भी हम इसमें समाविष्ट कर सकते हैं क्योंकि बिंब चाहे किसी भी प्रकार के हों पर उनका ग्रहण प्रत्यक्ष तथा मानस चक्षु द्वारा ही संभव होता है। स्थूल रूप से उन्हीं बिंब को दृश्य बिंब कहा जाता है, जो आँखों द्वारा दिखाई देते हैं। सविता सिंह की कविताओं में दृश्य बिंब स्थान–स्थान पर दिखाई पड़ते हैं –

"खोलती है मां पुराना संदूक

निकालती है उसमें से

ज़री की साड़ियां लहँगे रेशम के

लकड़ी के फ्रेम में मढ़े पिता के साथ

खिंचवाये श्वेत – श्याम चित्र"[3]

'पुराना संदूक' नामक कविता के उपरोक्त अंश में जरी की साड़ियां लहँगे रेशम के, लकड़ी के फ्रेम में श्वेत–श्याम चित्र पिता के साथ खिचवाये हुए चित्र साक्षत हमारे समक्ष उभरकर आते हैं।

सविता सिंह की एक अन्य कविता है 'आह मृत्यु' उसमें देखिये किस प्रकार से बिंब बनकर हमारे सामने आता है –

"मैनं मुड़कर देखा

काली ईरानी टोपी पहने खड़ा है मृत्युदूत

देखता मेरी तरफ भावहीन आँखों से।"[4]

'चीज़ें और यादें–1' कविता में सड़क की बगल में बैठे बूढ़े और चाय की दुकान का बिंब देखिए –

"रात–भर नींद में डूबी आँखें

सुबह के कोहराम में खुलती हैं

जब सड़क की बग़ल में

बैठने वाला बूढ़ा

खोल चुका है चाय की दुकान"[5]

एक अन्य कविता है 'सारा का सुंदर बदन' उसमें सविता सिंह की बिंब योजना कुछ इस प्रकार से है –

"सारा पहने हुए थी झीना–सा एक ब्लाउज़

अंदर था रेशम की स्लिप

होंठ थे सूजे गुलाबी

आँखों में नींद थी अब भी बाक़ी"[6]

सविता की कविताओं में स्वप्न कई स्थान पर है स्वप्न में दृश्य बिंब उनके यहां कई जगह देखने को मिलता है। 'रूथ का सपना' का उदाहरण दृष्टव्य है –

"रूथ का सपना मामूली सपना नहीं था

उसने देखा था एक घने पेड़ के नीचे

बैठे एक दार्शनिक संत को"[7]

'ऐलन की दोस्त' में बिंब योजना कुछ इस प्रकार से मिलती है –

"सोफ़े से उतर बिल्ली जा दुबकी

कमरे के कोने में लटकी रूसो की एक पेंटिंग के नीचे"[8]

सविता सिंह के दूसरे काव्य–संग्रह 'नींद थी और रात थी' की कविता 'थका बैंगनी फूल' में प्रकृति, बच्चे, गाय आदि का शब्द–चित्र बड़े सटीक ढंग से खींचा है –

"बाहर तेज़ धूप थी

नीम और बबूल ख़ूब ठीक से खिले थे

जैसे वे कोई पेड़ न हों फूलों के गुलदस्ते हों

कुछ ग़रीब बच्चे बगल के गंदे नाले में नहा रहे थे

एक गाय अपना रास्ता भूल थक कर

पेड़ों की छाँह छोड़ धूप में खड़ी हो गयी थी।"[9]

'नया अँधेरा' कविता का एक अंश देखिए –

"एक स्त्री आयी थी पीले चेहरे वाली लिये हाथ में आईना

एक आदमी उतरा था अपनी साइकिल से इसे देखने।"[10]

अन्य कविता 'एक दिन वह सैर पर निकली' की दो पंक्तियां है जहां सरसो के पीले खेतों और तालाब का बिंब उभरकर आता है –

"सरसो के पीले खेतों से होती हुई

वह गयी पुराने तालाब तक"[11]

डॉ. वीरेन्द्र मोहन समकालीन कविता के संदर्भ में बिंब चित्र की बात करते हुए लिखते हैं – "यह देखना और भी दिलचस्प है कि समकालीन कविता किस तरह के बिंब –चित्र प्रस्तुत कर रही है। क्या वे बिंब जातीय चेतना से संपृक्त हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि समकालीन कविता पाठक की दमित आकांक्षाओं को, उसकी अराजक और अतिरंजित भावनाओं को ही उद्वेलित कर रही है। निश्चित रूप से समकालीन कविता में कुछ ऐसा नहीं हैं, यह स्वीकार करने की बात है।"[12]

(ख) श्रव्य बिंब – जहां ध्वनिपरक शब्द –चित्र होता है, वहां श्रव्य बिंब होता है, इसे नाद बिंब भी कहा जाता है। सविता सिंह की कविताओं में यत्र–तत्र श्रवय बिंब दृष्टव्य होता है। उनकी कविताओं के उद्धरण द्वारा हम श्रव्य बिंब का अवलोकन कर सकते हैं। "बैठी हैं औरतें विलाप में' का यह अंश देखिए –

"बैठी हैं एक साथ

गठरी बन

बिसूरती

रोती विलाप करती स्त्रियां"[13]

यहां पर 'रोना' ध्वनि करता है, वह शब्द –चित्र खींच रहा है।

'आह मृत्यु' कविता में देखिए –

"ढन...से फिर एक आवाज़ हुई

लगा पैरों के नीचे आ लुढ़का है

ख़ाली किसी डिब्बे का घबराया–सा कोई ढक्कन"[14]

'प्रार्थना' कविता में बारिश और हवा की सरासराती आवाज़ का बिंब देखते ही बनता है –

"वे बस सुनते हैं

बारिश और हवा की सरसराती आवाज़

देखते हैं मौसम का आना और चले जाना"[15]

'कोई था और नींद थी' में श्रव्य बिंब –

"उसके पंखों की फड़फड़ाहट कई और आवाज़ों को

खींच लायी थी अपनी तरफ"[16]

कोई परिभाषा' नामक कविता में भी पंखों की जो भिनभिनाहट है उसका बिंब देखिए –

"एक आवाज़ थी भनभनाने की

जो उसके पंखों से उठ रही थी।"[17]

(ग) स्पर्श बिंब – काव्य का पाठन करते हुए जब यह महसूस हो या ऐसा शब्द चित्र बने जिसमें स्पर्श की अनुभूति हो वहां स्पर्श बिंब होता है। सविता की कविताओं में कई जगह पर स्पर्श बिंब के उदाहरण देखने को मिलते हैं। 'जब पत्ते झर रहे होते हैं' का एक उदाहरण दृष्ट्व्य है –

"जब प्रकृति उदास मुख लिये हवा–सी

बहती रहती है तुमसे लगकर

यों ही रखती अपना सिर तुम्हारे वक्ष पर।"[18]

उपरोक्त उद्धरण में प्रकृति का मानवीकरण करके जो बिंब निर्मित हुआ है, वह अपने आप में एक नये सौंदर्य बोध को जन्म देता है।

'मनोकामनाओं जैसी स्त्रियां' में स्पर्श बिंब का उदाहरण देखिए –

"ख़्याल है कि जिस जगह टिके हैं पाँव

वह भी खिसकने वाली है"[19]

स्पर्श बिंब का एक अन्य उद्धरण हम 'सारा का सुंदर बदन' कविता में देख सकते हैं –

"मिली सारा जब मुझे तीसरी बार

साथ में था नया प्रेम उसका

उसे चूमता"[20]

'प्रेम–प्रसंग' में कैसे एक प्रेमी–प्रेमिका के मिलन पर जो बिंब बनता है, इस कविता में हम कुछ इस प्रकार से देखते हैं –

"उसकी याद में गर्दन झुकाये

बेबस उसी की गोद में

बैठी है वह

हौले से वह चूमता है उसके कान"[21]

'प्रतिकार' कविता के एक अंश में स्पर्श बिंब कुछ इस तरह से दिखाई देता है –

"कोई दुपट्टा या फिर आँचल कोई

सट जायेगा उसके चेहरे से

जिसे भींचकर वह पकड़ लेगा सटा लेगा कलेजे से"[22]

'एक चुप्पी कविता' में देखिए –

"क्या था जो भरी दोपहर में बच्चे को स्तन से लगाये

पेड़ के नीचे बैठी सोच रही थी एक स्त्री"[23]

(घ) आस्वाद्य बिंब – काव्य में जब आस्वाद्य अर्थात् जहां किसी खाद्य वस्तु या सामग्री को चखने का बोध हो वहां आस्वाद्य बिंब होता है। कुछ उदाहरणों से हम उसको समझ सकते हैं। 'रोज़मरी एक अच्छी लड़की है' का उदाहरण है –

"ताज़ा मछलियाँ मार वहीं बर्फ़ पर

भूनकर खाता है"[24]

'मुश्ताक़ मियां की दौड़' का एक उदाहरण इस प्रकार से है –

"दौड़ते रहे मुश्ताक मियां बेचारे

ढाबा चलाते थे

लाखों लोगों को अब तक खिला चुके थे

गोश्त रोटी तरकारी दाल सलाद

कौन नहीं आता था बैठता था उनकी बेंच पर

पीता था पानी मिटाता था थकान और भूख"[25]

(ड.) गंध बिंब (घ्राण बिंब) – काव्य में गंध का, किसी भी प्रकार की गंध का शब्द चित्र जब उभरकर सामने आता है, तब वहां गंध बिंब होता है, इसे घ्राण बिंब भी कहते हैं। सविता सिंह की कई कविताओं में गंध बिंब का अत्यंत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। काव्यगत उद्धरण से इसको समझा जा सकता है।

'मैं किसकी औरत हूं' कविता में गंध बिंब –

"और इसमें बसी प्रकृति की बंध सब मेरी है"[26]

'ख़ुशगवार सुबह' में बंध बिंब –

"फूलों में बसी मादक कई प्रकार की गंध"[27]

'नींद का रंग' में गंध बिंब –

"तैरने देती है अपनी ही महक की तरह

बनकर कभी रातरानी कभी नीबू के फूल"[28]

'रातरानी की महक' में गंध बिंब

"हवा के साथ उड़ती आयी है रातरानी की महक"[29]

बिंब के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए डॉ. भगीरथ मिश्र लिखते हैं – "बिंब रचना काव्य का मुख्य व्यापार है। बिम्बों के द्वारा कवि वस्तु, घटना, व्यापार, गुण, विशेषता, विचार आदि साकार तथा निराकर पदार्थो और मानसक्रियाओं को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियग्राह्य बनाता है। काव्य अपने इसी व्यापार में अन्य शास्त्रों या विज्ञानों से भिन्न है।"[30]

प्रतीक

प्रतीक से अभिप्राय हैं संकेत चिह्न, प्रतिरूप। प्रतीक ऐसा शब्द का चिन्ह है, जिससे किसी वस्तु, का बोध कराया जाता है, जो अगोचर होता है, उसके लिए प्रयुक्त होता है।

डॉ. भगीरथ मिश्र प्रतीक को समझाते हुए लिखते हैं – "अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है। यह प्रतीक–पद्धति सामान्य जीवन और व्यापक व्यवहार–क्षेत्र में भी प्रयुक्त होती है। राष्ट्रीय या धार्मिक झण्डा, सिक्का, लिपि, वृक्ष, फल, व्यक्ति आदि प्रतीक अर्थ प्रतीक होते हैं। उदाहरणार्थ, तिरंगा झण्डा भारतीय राष्ट्र का, रुपया भारतीय सिक्के का, वटवृक्ष विद्या का, कमल भारतीय संस्कृति का तथा नागरी भारतीय लिपि का प्रतीक है। इसी प्रकार जयचन्द्र देशद्रोही का, शिवाजी स्वातंत्र्य–संग्राम–सेनानी का, कालिदास कवि का, मीरा भक्त का, बृहस्पति ज्ञान का और गांधी शांति का प्रतीक है। यह प्रतीक पद्धति सभी देशों और सभी कालों में प्रचलित रही है और किसी भी देश और काल के लिए नयी नहीं है, परन्तु यूरोपीय प्रतीकवाद 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में वहां की कला एवं साहित्य के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में प्रकट हुआ। यह स्वयं प्रतिक्रिया – स्वरूप आया और इसकी भी प्रतिक्रिया हुई।"[31]

सविता सिंह की एक कविता 'जंगल के पेड़' में प्रतीक किस प्रकार से दिखाई पड़ता है –

"जंगल के हर पेड़ ने देखे सपने

हरियाली के बीच पनपे सपने

बाँटे दुख–सुख हर पेड़ ने एक दूसरे से

गुँथ गये जीवन के आह्लाद एक दूसरे के

एक दूसरे से

सन्नाटा रहा देर तक लेकिन इस जंगल में

जब एक बार मैंने इनको अपना नाम बताया

मैं भी एक पेड़ हूं यह समझाया।"[32]

प्रथम पंक्ति में जंगल मानव का प्रतीक है एवं जंगल का मानवीकरण भी किया गया है। तथा 'सन्नाटा रहा देर तक लेकिन इस जंगल में' में जंगल संसार का प्रतीक है तथा 'मैं भी एक पेड़ हूं यह समझाया' में 'पेड़' इंसान का प्रतीक है।

भाषा, संरचना, छंद, शैली

किसी भी रचनाकार या कवि की भाषा के विश्लेषण के बिना, उसके काव्यात्मक प्रभावों को नहीं जाना जा सकता है। सविता सिंह की कविताओं की भाषा देखें तो हमें यह ज्ञात होता है कि कहीं–कहीं कविता में उनकी भाषा टेढ़ापन लिए हुए है तो कहीं–कहीं सपाटबयानी लिए हुए है। कुछ उदाहरणों द्वारा हम इसे समझ सकते हैं 'इस तरह' कविता में भाषा का टेढ़ापन देखिए –

"मुझ पर आकर पड़े

उसके बेचैन अकेलेपन के छींटे

ऐंठी उसकी देह का दर्द मुझमें समा गया

जैसे ही मैंने उसे अपने भीतर देखा

बार–बार यादें हिलोरों की तरह

सिर मारे लगी मेरे अनमने चित्त पर"[33]

'नगण्य की महिमा' में भाषा का टेढ़ापन कुछ इस प्रकार से है –

"एक चीज़ जो मेरे कमरे में पड़ी

किसी घड़ी या पेंसिलस्टैंड जैसी लग रही थी

अचानक सिकुड़ने लगी है

धीरे–धीरे कुछ घटित हेाता लगता है

वह चीज़ अब मात्र एक बिंदु–भर रह गयी है।

और संतुष्ट है कि वह कुछ है

कि वह अर्थ पैदा कर सकती है इस कायनात में"[34]

इस उद्धरण में अर्थ तक पहुँचने में काफी कठिनाई होती है।

'अल्पप्राण का साहस' का एक उद्धरण देखिए –

"वहाँ कांपती हुई खुशी थी

ठहरी हुई एक चौड़े जंगली पत्ते पर

मुस्कुराहट में अपने छिपाये अपार दुख

जो आने वाला था

बहा ले जाने सारे आँसू सारी करुणा"[35]

'मन ही नदी है' कविता में भी भाषा का यही टेढ़ापन देखने को मिलता है –

'मन ही दरअसल नदी है

यदि नाव है कोई पानी

यही है वह अंधेरा

जिसमें हैं बुझी–सी पृथ्वी बैठी"[36]

भाषा में सपाट बयानी

सविता सिंह की कविताओं की भाषा जहाँ टेढ़ापन लिए हुए है वहीं उनकी कई कविताओं में सपाटबयानी भी मिलती है। 'रोज़मरी एक अच्छी लड़की है' कविता इसका सटीक उदाहरण है।

"रोज़मरी एक अच्छी लड़की है

बस ज़रा–सी मोटी है

उसकी अपने मकान मालिक से अच्छी दोस्ती है

जब कभी वह ग्रीस जाता है

अपनी सारी बिल्लियाँ रोज़मरी के पास छोड़ जाता है

रोज़मरी भी अफ्रीका जाने वाली है

उसने भी चार बिल्लियाँ पाली है"[37]

'एलेन की दोस्त' कविता में भी भाषा की ऐसी ही सरलता दिखाई पड़ती है –

"आज एलेन गया था अपनी दोस्त से मिलने

पहन मोटे चमड़े वाले पुराने बूट

बाहर कड़ाके की ठंड थी लेकिन एलेन गया था

खड़ा दरवाज़े पर उसके

रहा कुछ देर उधेड़बुन में

जाए अंदर या फिर लौट जाए

बसे किसी चिड़िया या गिलहरी के हृदय में

पाये प्रेम वहाँ

खेले बर्फ़ पर उनके साथ कोई खेल

खोजे मन लगाने के नये तरीक़े"[38]

एक अन्य उदाहरण कविता 'जो कोई भी नेक इंसान कहेगा' में से है, जहाँ सविता सिंह की सपाटवयानी फिर से हमारे समक्ष उभर कर आती है –

"उसने कहा बख़्श दो मुझे

तुम जानते हो

मैं वही हूँ नसरीन तुम्हारी मुँह बोली बहन

कई बार जो तुम्हारे काम आयी

जब तुम बेहद बीमार थे याद करो

जब घर में और कोई न था तुम्हारे

भागकर मैं ही डॉक्टर के पास गयी थी

पहली बार जब तुम नौकरी के लिए निकले थे

मैंने तुम्हारे लिए दुआ माँगी थी।"[39]

भाषा में ऐसी सहजता, सरलता कविता में गद्यात्मकता को और भी पुखर बना देती है। डॉ. हरदयाल लिखते हैं कि – "कविता में आज एक प्रकार की अकलात्मकता आ गयी है। 'सपाट बयानी' इसी का दूसरा नाम है। आज का कवि वैसी चिकनी–चुपड़ी कविता नहीं लिखता जैसी छायावादी कवि या 'नयी कविता' का कवि लिखता है।"[40]

हमें यह समझना होगा कि समय के साथ–साथ जो बदलाव हमारे आस–पास होते हैं, हमारे समाज में होते हैं, उन बदलावों के प्रभाव को भाषा बहुत हद तक ग्रहण करती है। यह जरूरी नहीं कि छायावाद में जो लिखा गया वैसा अब भी लिखा ही जायेगा। छायावाद, नई कविता का दौर एक अलग दौर था। वह समय स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले व बाद का समय था। तथा आज की कविता का समय वैश्वीकरण के दौर का समय है। जहाँ भाषा भी बदल चुकी है और कविता में वह अब छंदबद्ध न होकर मुक्त छंद हो गयी है।

सविता सिंह की सभी कविताएँ मुक्त छंद में रचित हैं, परंतु उसका जो भाव है, वह पाठक के हृदय तक पहुँचता है।

"प्रत्येक मनुष्य में कविता लिखने की क्षमता है, लेकिन प्रत्येक मनुष्य छंद नहीं लिख सकता और न लय का ठीक तरह से निर्वाह कर सकता है। ऐसी हालत में लय और छंद के बंधनों से कविता को बांधकर कोटि–कोटि जनों को कवि बनने से वंचित रखना – यह सामाजिक न्याय नहीं है। नई कविता में उस शिल्प का परित्याग कर दिया गया है; जो कुल इने–गिने लोगों की बपौती है जिनके कान संगीतमय है, जो लय, छंद एवं अनुप्रास में पारंगत है।"[41]

सविता सिंह की कविताओं में संवाद योजना

सविता सिंह की कविताओं में भाषा की सरलता, टेढ़ापन होने के साथ–साथ संवाद भी हैं। जो काव्य में एक धारा बना देता है। 'मैं किसी की औरत हूँ' में संवाद योजना इस प्रकार से बन पड़ती है –

"मैं किसकी औरत हूँ

कौन है मेरा परमेश्वर

किसके पाँव दबाती हूँ

किसका दिया खाती हूँ

किसी मार सहती हूँ...

ऐसे ही थे सवाल उसके

बैठी थी जो मेरे सामनेवाली सीट पर रेलगाड़ी में

मेरे साथ सफ़र करती

+ + + + +

सोचकर बहुत मैंने कहा उससे

'मैं किसी की औरत नहीं हूँ

मैं अपनी औरत हूँ

जब जी चाहता है तब खाती हूँ

मैं किसी की मार नहीं सहती

और मेरा परमेश्वर कोई नहीं'"[42]

एक अन्य कविता 'याद करने की पद्धति' में संवाद योजना इस प्रकार है –

"मैंने तपाक से कहा 'और गीता दत्त? वह भी तो

अपने गानों की ही तरह थीं

'हाँ' उसने कहा 'वह एक व्यस्क गायिका थीं

लता की तरह लड़की की आवाज़ में सदा गाती हुई

कोई अचंभा नहीं"

'गीता दत्त की आवाज़ में सदियों की व्यथा है

जिसमें अपने हिस्से की तकलीफ़ हम आज भी तलाश सकते हैं ...'मैंने सोचते हुए कहा

फ़िल्मकार जैसे मेरी बातों से सहमत था

तभी उसने कहा 'क्या आपके पसन्दीदा गीतकार ओ. पी. नैयर है ?'

मैंने हाँ कहा, 'वह ओ. पी. नैयर जिसके लिए आशा भोंसले गाती थीं' मैंने बात साफ़ की

सहजता से फ़िल्मकार ने कहा 'अक्सर गीता दत्त से

मुड़कर ख़ुद से परेशान लोग आशा की तरफ़ ही जाते हैं

उनकी आवाज़ में एक मस्ती है जैसी रफ़ी और

किशोर कुमार की आवाज़ों में थी

जो सब कुछ खोल देती थी'"[43]

संवाद योजना के अतिरिक्त सविता सिंह की कविताओं में लंबे वाक्यों का प्रयोग कई बार हुआ है। 'अपने जैसा जीवन' संग्रह में लंबे वाक्यों का प्रयोग कुछ इस प्रकार से हुआ है –

"'रात की मुँडेर पर बैठी बड़ी चिड़िया को पकड़ने की चेष्टा करती' पृ. 14

'कटता जायेगा दिन और रात का निर्मम प्रहार मुझ पर' पृ. 19

'जिसके जाने के बाद देर तक रहती थी मैं गुमसुम' पृ. 24

'जिस तरह खड़े हो लेते हैं किसी घने पेड़ के नीचे' पृ. 28

'जहाँ जाकर ठहरती हैं पृथ्वी से लौटी उन्मुक्त हवाएँ' पृ. 30

'क्यों उसका रक्त जमा नहीं देता विश्व की प्रक्रिया को' पृ. 31

'जिनमें उनके लिए अंधकार का मरुस्थल बिछा है' पृ. 33

'छाये रहते हैं बड़े डैनों वाले पक्षी उनके मन के आकाश में' पृ. 36

'मैंने उसकी आँखों को अपने अकेलेपन के गर्व से भरना चाहा' पृ. 41

'भूल नहीं पाती वह विनय जो उसकी आँखों में छलका था' पृ. 67

'फिर किसी दिन तय करके उड़ने–पड़ने लगते हैं ढेर सारे पत्ते' पृ. 67

'लौटती फिर जाकर किसी सूखी नदी की थकी रेत पर' पृ. 103"[44]

'नींद थी और रात थी' काव्य संग्रह में लंबे वाक्यों का प्रयोग देखिए –

"'बाँहों को हवा में ऊपर उठा लेती हुई सुखद एक अँगड़ाई' पृ. 13

'एक हँसी दर्पण सी अपने होठों पर रख ली थी उसने' पृ. 14

'मुझे भय–सा होने लगा था कहीं तेज़ नाचती हुई यह औरत समाप्त न हो जाये' पृ. 18

'सपने तैरते हुए जा रहे थे सामने पागल चिड़िया की आँखों में' पृ. 21

'दुख चला आ रहा था पुरानी किसी नाव की तरह मेरी तरफ़' पृ. 22

'लेकिन एक सपना था जो अब भी झिलमिला रहा था' पृ. 26

'वह उसके लिए ढेर सारा अंधकार लेकर आयी थी इस बार' पृ. 28

'एक तूफान समेटकर मन के किसी कोने में दबा दिया था' पृ. 36

'बस बीच–बीच में आता था घुमड़ता हुआ पश्चाताप उसे अपने होने का' पृ. 37

'एक खुशी उसके बालों को बाँधे लाल फीतों पर नाचती होती थी' पृ. 38

'अँधेरे में नाचती लड़कियाँ निश्चित नाच हरी हैं कोई नया नाच' पृ 46

'और लेखन क्या है ...एक अद्‌भुत खेल ही तो जिसे सिर्फ़ मनुष्य खेलता है' पृ. 50

'मगर क्या कर सकती थी वह ख़ुशी जो एक ओस की बूंद भर थी' पृ.60

'बगल के ख़ाली मैदान में ऊँची–ऊँची जंगली घास डोल रही थी' पृ. 63

'याद है सबसे ज्यादा मैं उसके बालों से ही खेला करती थी' पृ. 75

'फिल्मकार चुप हो गया था और हमारी बातचीत जो एक खेल की तरह चल रही थी' पृ. 81

'किसी अनजान स्रोत से ज्यों आती हो भीतर जल के गिरने की आवाज़' पृ. 94

'एक विश्वास था कि जीवन कभी समाप्त नहीं होने वाला प्रपात है' पृ. 119

'वहाँ अब भी बचा है पेड़ों का साम्राज्य जीवित पत्ते–पत्ते में' पृ. 120"[45]

कविता में लय, तुक और संगीतात्मकता आवश्यक तत्व होते हैं जो कविता में एक धारा प्रवाह बनाने का कार्य करते हैं। सविता सिंह की कवतिाओं में अनेक स्थानों पर हमें लय देखने को मिलती है, तथा तुक और संगीत का भी उनके यहाँ आग्रह है। डॉ. भगीरथ मिश्र लय की महत्ता के बारे में लिखते हैं कि – "काव्यभाषा में लय का होना अनिवार्य है। जहाँ गद्य की भाषा व्याकरण के नियमों के हिसाब से चलती है, वहीं काव्य या पद्य की भाषा लय के हिसाब से चलती है।"[46]

'रोज़मरी एक अच्छी लड़की है' कविता में जो लय है वह देखते ही बनती है –

"रोज़मरी भी अफ्रीका जाने वाली है

उसने भी चार बिल्लियाँ पाली है'"[47]

'कैफ़े प्राग' में लयात्मकता–

"जो मिली थी जब दूसरी बार

तो फटी आँखों से देख रही थी खिड़की के बाहर"[48]

'रंग भूरा' में संगीात्मकता–

"पहाड़ों की छाती का रंग

सपनों के आकाश का रंग

शिलाओं के वार्तााताप का रंग है

भूरा"[49]

'हवा फिर गाती है' कविता में संगीतात्मकता

"हवा गाती है फिर वहीं गीत

जिसे सुनती थी मैं निस्संग"[50]

'शाम में एक कामना' कविता में तुक का आग्रह देखिए–

"क्य बची रहेगी वह राह सुलगती–सी

याद में घुली–मिली सुख की आकांक्षा

नींद में एक मोह–सी व्याप्त रोम–रोम में

स्वप्न में तैरती दो आँखें हँसों–सी"[51]

'प्रतिकार' कविता में लयात्मकता देखिए–

"एक पत्ता बार–बार उससे लगकर हवा में डोल रहा था

और वह उसके गिरने का इंतज़ार कर रहा था।"[52]

डॉ. गोबिन्द प्रसाद अपनी पुस्तक 'अलाप और अंतरंग' में लिखते हैं – "लय अर्थ को भेदती है...रहस्य मर्म को उद्‌घाटित करने का सूक्ष्मतर यंत्र है। क्योंकि शब्द नित्य हैं (शास्त्रों में उसे नित्य माना गया है।) – उस नित्य की पहचान का संकेत –सूत्र लय देती है। लय हमें अर्थ के आइने तक ले जाती है...लय अर्थ का सुराग़ देती है। स्वयं वह अर्थ नहीं है लेकिन फिर भी अनुभूति के आयाम को छूती हुई सी, अनुभूति की उपज की ओर इशारा करती हुई सी...कुछ–कुछ अर्थातीत!"[53]

ध्वनि–साम्यता के आधार पर कुछ शब्दों में आपस में अर्थ होता है और कुछ में नहीं भी होता है। सर्वप्रथम 'अपने जैसा जीवन' में ध्वनि साम्यता के उदाहरण देखे जा सकते हैं–

"रंग–बिरंगी, अलग–थलग, बचा–खुचा, लीप–पोत, उधड़े–फटे, जैसे–तैसे, बेरोक–टोक, मान–मर्यादा, फुदक–फुदककर, घुली–मिली'[54]

'नींद थी और रात थी' में ध्वनि साम्यता –

"ज्यों का त्यों, जीर्ण–शीर्ण, ले–दे के, टूटा–फूटा, ठीक–ठाक, आर–पार, जैसा–तैसा, इर्द–गिर्द, सीधा–सरल, लत्ते–कपड़े, ढुल–मुल, मिलता–जुलता, बचे–खुचे"[55]

सविता सिंह की कविताओं में हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी भाषाओं के शब्दों का सामंजस्य विद्यमान है। जिसे उनकी अधिकांश कविताओं में देखा जा सकता है। सर्वप्रथम हिंदी के देशज (ग्रामीणांचल) शब्दों द्‌वारा शोभित अंशों पर दृष्टिपात करते हैं –

"किस ओर चली जा रही है

इतनी सारी तितलियाँ

बाहर की टह टह धूप का रंग बदलती"[56]

केदारनाथ सिंह का इस संदर्भ में कहना है कि – "मसलन पूरब में, जिस क्षेत्र का मैं हूँ, उधर भोजपुरी अंचल में एक शब्द आता है – 'टहटह', 'टहटह' शब्द प्रायः चांदनी के साथ आता है, सविता उसे 'चांदनी' से हटाकर 'धूप' के संदर्भ में अर्थवान बनाती है"[57]

'विमला की यात्रा' में देशज शब्दों की सुन्दरता देखिए –

"बारह साल की उम्र में

विमला ब्याह दी गयी

जब वह गयी पति के घर पहली बार

उस घर को उसने बनाया अपना

लीप–पोत कर चमकाया उसे

कूट–पीस कर हमेशा इकट्ठा किया और रखा

साल–भर का अनाज

धोये सबके पाँव

सिले सबके उधड़े–फटे कपड़े"[58]

उपरोक्त अंश में लीप–पोत का सटीक प्रयोग कविता में हुआ है। गाँव में कच्ची ज़मीन पर सीमेंट द्वारा निर्मित फर्श न होने पर महिलाएँ मिट्टी और भैंस के गोबर से जमीन को एकसार लीपती–पोतती हैं। इसी लीप–पोत का वर्णन यहाँ हुआ है।

उर्दू शब्दावली व अरबी, फ़ारसी शब्दों का प्रयोग सविता सिंह के काव्य में यत्र–तत्र खूब हुआ है। यथा –

"एक गरिमामय जीवन जीने की तरकीबों पर

वह कब से सोच रही थी"[59]

यदि 'तरकीबों' के स्थान पर 'कलाओं', 'ढंगों' आदि समानार्थक शब्द रखें तो पंक्तियों में लगातार चलता धारा–प्रवाह बाधित होगा। उसमें लयात्मकता का क्षय होगा। अतः 'तरकीबों' का प्रयोग उपयुक्त है।

'नयी उलझन' कविता में उर्दू शब्द का महत्त्व देखते ही बनता है। उदाहरणार्थ–

"कितने प्यार से चलता था सारा कार्य–व्यापार जीवन का

सुबहें होती थीं कितनी साफ़–सफ़ेद

दोहरें आरामदेह

लालसाओं में लिपटी कैसे डूब जाती थी शाम रात के आग़ोश में"[60]

'आग़ोश' शब्द में प्रगाढ़ता है। काव्य में इस प्रकार के शब्द बोझिलता पैदा नहीं होने देते। उपरोक्त पंक्तियों में शाम का रात की बाँहों में डूब जाना इतना सुंदर नहीं लगता जितना शाम का रात के आग़ोश में डूब जाना अच्छा लगता है। चरित्र/पात्र के अनुसार भी सविता सिंह ने भाषा इज़ाद की है। जैसे –

"उसने कहा बख़्श दो मुझे

तुम तो जानते हो

मैं वही हूँ नसरीन तुम्हारी मुंह बोली बहन

+ + + + +

अपनी आँखों से नफ़रत पोंछ दो

वह तुम्हारी रूह को गन्दा किये जा रही है।"[61]

हिंदी, उर्दू के साथ–साथ अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी सविता सिंह के यहाँ देखने को मिलता है।

"एक चीज़ जो मेरे कमरे में पड़ी

किसी घड़ी या पेंसिलस्टैंड जैस लग रही है।"[62]

अन्य उद्धरण में अंग्रेजी शब्द का प्रयोग

"याद चलचित्रों की तरह साफ सुनियोजित

चित्रों की गाथा नहीं रही अब

बिम्बों की गहन लैंडस्केप बन गयी है।"[63]

'बिम्बों की गहन लैंडस्केप' ये सविता सिंह का शब्दों का एक नया प्रयोग हैं। जहाँ वे हिंदी व अंग्रेज़ी शब्दों के मध्य तारतम्यता बैठाती नज़र आती हैं।

संदर्भ

[1] कथादेश, जनवरी 2007, पृ. 96
[2] भगीरथ मिश्र, नया काव्यशास्त्र, पृ. 105
[3] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 50
[4] वही, पृ. 51
[5] वही, पृ. 56
[6] वही, पृ. 71
[7] वही, पृ. 73
[8] वही, पृ. 76
[9] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 39
[10] वही, पृ. 104
[11] वही, पृ. 140
[12] सं. लीलाधर मंडलोई, कविता के सौ बरस, पृ. 340
[13] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 33
[14] वही, पृ. 51
[15] वही, पृ. 89
[16] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 21
[17] वही, पृ. 89
[18] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 9
[19] वही, पृ. 30
[20] वही, पृ. 71–72
[21] वही, पृ. 98
[22] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 29
[23] वही, पृ. 35
[24] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 69
[25] सविता सिंह, नींद थी और रात, पृ. 107
[26] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 41
[27] वही, पृ. 80
[28] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 20
[29] वही, पृ. 73
[30] भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ. 261
[31] वही, पृ. 271
[32] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 55
[33] वही, पृ. 28
[34] वही, पृ. 60
[35] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 60

[36] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 12

[37] वही, पृ. 69

[38] वही, पृ. 75

[39] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 109

[40] सं. बलदेव वंशी, समकालीन कविता विचार कविता, पृ. 62

[41] प्रधान सं. डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिंदी भाषा और साहित्य समग्र अध्ययन, पृ. 294–295

[42] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 40

[43] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 80–81

[44] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन

[45] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन

[46] डॉ. भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ. 101

[47] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 69

[48] वही, पृ. 77

[49] वही, पृ. 81

[50] वही, पृ. 84

[51] वही, पृ. 96

[52] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 28

[53] गोबिन्द प्रसाद, आलाप और अंतरंग, पृ. 145

[54] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन

[55] सविता सिंह, नींद थी और रात थी

[56] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ.17

[57] केदारनाथ सिंह, इंडिया टुडे, पृ. 69

[58] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 38

[59] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 49

[60] वही, पृ. 53

[61] वही, पृ. 109

[62] सविता सिंह, अपने जैसा जीवन, पृ. 60

[63] सविता सिंह, नींद थी और रात थी, पृ. 74

उपसंहार

आठवें दशक की हिंदी कविता आम आदमी, साधारण व्यक्ति की बात करती है। वर्तमान में भ्रष्ट होती व्यवस्था के प्रति उसमें क्षोभ है। आज की न्याय प्रणाली पर, चापलूसों, चाटूकारों पर व्यंग्य कसती है। झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार आदि के लिए तीव्र आक्रोश है। मानवीय संवेदना की पक्षधर है। आतंकवाद की समस्या एवं प्रकृति के महत्त्व पर प्रकाश डालती है। आज की व्यस्त पीढ़ी में टूटते–परिवार के बीच संयुक्त परिवार की महत्ता बतलाती है। वहीं यंत्रयुगीन दुनिया में आज का आदमी किस प्रकार विज्ञापनी संस्कृति से प्रभावित हो बाजारीकरण की चपेट में आ गया है, इन सभी तथ्यों से रू–ब–रू कराती है।

इन सभी स्थितियों, परिस्थितियों के बीच समकालीन हिंदी कविता ने अपनी पहचान बनाई है। चंद्रकांत देवताले, विनोदकुमार शुक्ल, लीलाधर जगूड़ी, गिरधर राठी, ऋतुराज, आलोक धन्वा, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, लीलाधर मंडलोई, गोबिन्द प्रसाद, हेमंत कुकरेती आदि समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

समकालीन कविता जमीन से जुड़ी है, इसीलिए वह आदमी के सुख–दुख, राग–विराग आदि परिस्थितियों में उसके सबसे ज़्यादा क़रीब है। तथा ज़मीन से जुड़ा होना ही उसे अन्य कविता आंदोलनों से तटस्थ लाकर खड़ा कर देता है।

आठवें दशक में कवयित्रयों ने भी खूब काव्य–सर्जना की है। अनामिका, कात्यायनी, गगनगिल, सुनीता जैन, इन्दु जैन, सविता सिंह, निर्मला गर्ग, नीलेश रघुवंशी आदि कवयित्रियों के सरोकार समान धरातल पर चलते हुए परस्पर भिन्नता लिए हुए हैं। ये कवयित्रियां औरत की देह से जुड़े विविध प्रश्नों को अपनी कविताओं में लेकर प्रस्तुत हुई हैं एवं प्राचीन परंपराओं, रूढ़ियों से मुक्ति पाने का निरंतर प्रयास कर रही हैं, समाज में अपनी अस्मिता के लिए लड़ रही हैं, वे बराबरी

चाहती है। भारतीय समाज में जो लिंगाधारित भेदभाव है, वह स्त्री–पुरुष में असमानता पैदा करता है। सदियों से यह असमानता चली आ रही है। आज स्त्री उस पुरुष वर्चस्वता से मुक्ति पाना चाहती है, जो सदियों से उसको प्रताड़ना देती आई है। समकालीन कवयित्रियों ने स्त्री–जीवन के विविध आयामों पर दृष्टिपात करते हुए उसे वाणी दी है।

सविता सिंह का जो काव्य स्वर है, वह स्त्री समानता का पक्षधर है। कहने को हम 21वीं शताब्दी में जी रहे हैं, वैज्ञानिक, तकनीकी आदि दृष्टि से यह युग प्राचीन रूढ़ियों को पीछे धकेलता समृद्धि, संपन्नता की ओर अग्रसर है, मनुष्य चांद तक पहुंच गया है। इस युग में स्त्रियों की मानसिक व्यक्तिक, आर्थिक संपन्नता पर ताला लगा हुआ है। सविता सिंह ने अपनी कविताओं के भीतर सदियों से बेड़ियों में जकड़ी स्त्री की दुर्गति को बयां किया है, उनके यहां स्त्री संबंधित विविध आयाम कविता में मुखरित हुए हैं। सविता की कविताओं में स्त्री पुराने बंधनों को तोड़ देना चाहती है, वह आत्मनिर्भर होकर किसी की पत्नी के रूप में नहीं अपितु अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ जीना चाहती है। कवयित्री ने अपनी लेखनी द्वारा वेश्यावृत्ति के दलदल में फँसी किशोरियों, लड़कियों का अत्यंत ही मार्मिक वर्णन किया है। आज समाज में यह एक व्यापार बन गया है, छोटी बच्चियों, किशोरियों का आये दिन गायब होना बहला–फुसलाकर उन्हें कोठे पर बिठा देना, जबरन लड़कियों के साथ बलात्कार आदि घटनाएं दिन–प्रतिदिन समाज में बढ़ती जा रही हैं। समाचार–पत्रों में ऐसी घटनाओं का वर्णन हर दिन होता है। घरेलू स्त्रियों की स्थिति, उसके अपने घर का सवाल सविता सिंह ने अपनी कविताओं में उठाया है। वास्तव में लड़कियों के साथ यह कैसा विडंबना होती है कि जहां वे शिशु अवस्था से पली–बड़ी, जिस घर में बचपन से वे रही, भावनात्मक रूप से परिवार, घर की एक–एक ईंट से जुड़ी वह घर छोड़ विवाह पश्चात् उसे पति के घर जाना होता है। यह आत्मा के साथ छल है, भावनात्मक खिलवाड़ है, जिसे लड़कियां सहज रूप से स्वीकार करना सीख जाती हैं।

'विमला की यात्रा' कविता में विमला को पति की मृत्यु पश्चात अपने मायके जाना होता है। यहां सविता सिंह स्त्री के जीवन में स्थिरता चाहती है। वह उस भटकाव से मुक्ति पाना चाहती है, जो परिस्थितगत पैदा हुआ। इसीलिए विमला कहती है –

"हे ईश्वर हों जीवन में मेरे ऐसी यात्राएं अब कम
हो मेरा एक ही जीवन
एक अपना घर
जैसे है मेरी एक आत्मा" (विमला की यात्रा, पृ. 39)

सविता सिंह के यहां जो स्त्री–पुरुष संबंध है वह उस संबंध से मुक्त नहीं होना चाहती। अपितु पुरुष द्वारा दी जा रही जो यातनाएं हैं उससे मुक्त हो जाना चाहती हैं। वह अपनी स्वयं की पहचान चाहती हैं। 'मैं किसी औरत हू' में एक सत्तर वर्षीय वृद्धा द्वारा प्रश्नहोता है कि 'मैं किसकी औरत हूं/कौन है मेरा परमेश्वर/किसके पाँव दबाती हूं /किसका दिया खाती हूं/किसकी मार सहती हूं.. .' इस पर कवयित्री कहती है –

'मैं किसी की औरत नहीं हूं
मैं अपनी औरत हूं
अपना खाती हूं
जब जी चाहता है तब खाती हूं
मैं किसी की मार नहीं सहती
और कोई मेरा परमेश्वर नहीं' (मैं किसकी औरत है, पृ. 40)

सविता सिंह अस्मिता की तरफ आग्रह करती है। यहां जो आक्रोश है, वह उन्हें कहीं–न–कहीं अन्य कवयित्रियों से जरूर अलगाता है। सविता सिंह स्त्री के ऊपर पुरुष जाति के जो विशेषण है उसको नकारना चाहती है। अपनी अस्मिता के

प्रति जो बेचैनी है। ये कविता उसको कहीं गहरे में जाकर प्रमाणित करती है। वह अपनी देह पर अपना हक चाहती है, वह अब किसी पुरुष की मार नहीं सहना चाहती।

सविता सिंह के यहां स्त्री समस्या की समाधान की जो संभावना है, वह अन्य कवयित्रियों में न के बराबर दिखाई पड़ती है। यही उनके काव्य की विशष्टता है उपलब्धि है।

इसके अतिरिक्त सविता सिंह ने प्रकृतिपरक कविता भी लिखी हैं। प्रकृति के आलंबन उद्दीपन दोनों रूपों के साथ–साथ उसका मानवीकरण भी इन्होंने कविता में किया है। साथ ही प्रेम संबंधी कविताओं में प्रेम में पड़ी स्त्री की स्थिति का वर्णन किया है तथा आज किस प्रकार से प्रेम में छल–कपट, अविश्वास पनपने लगा है। इसका अत्यंत ही भाव–विह्वल वर्णन किया है।

अपने काव्यात्मक पहलू को सविता सिंह ने दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, गंध व आस्वाद बिंबो द्वारा सुशोभित किया है। उर्दू, अंग्रेज़ी, हिंदी, तत्सम, तद्भव देशज शब्दों द्वारा गढ़ा गया वाक्य विन्यास काव्य में प्रवाहमयता पैदा करता है। इनकी कविताओं में तुक, लय, संगीत का भी आग्रह स्थान – स्थान पर दिखाई देता है। अपने अनुभवों को भाषा में पिरोकर जो रूप कविता को प्रदान किया है। वह शिल्प की दृष्टि से सटीक साबित होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

सविता सिंह	अपने जैसा जीवन	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051 पहला संस्करण : 2001
सविता सिंह	नींद थी और रात थी	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051 पहला संस्करण : 2005

सहायक ग्रंथ

अजय तिवारी	समकालीन कविता और कुलीनतावाद	राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण : 1994
अतिथि सं. लीलाधर मंडलोई/अरविंद जैन सं./सहायक सं. प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा	स्त्री :मुक्ति का सपना	वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 2004 द्वितीय आवृत्ति संस्करण : 2009
अनामिका	कवि ने कहा	किताबघर,, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 2008
अरुण कमल	नये इलाके में	वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 1996 द्वितीय संकरण : 1999 तृतीय संस्करण : 2006

आलोक धन्वा	दुनिया रोज़ बनती है	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 1998 पहली आवृत्ति : 2000
इन्दु जैन रेखा उप्रेती, रेखा सेठी (संपा.)	हवा की मोहताज क्यों रहूं	हार्परकालिस पब्लिशर्स इंडिया ए जॉइंट वेंचर विद द इंडिया टुडे ग्रुप नयी दिल्ली 2009 में प्रकाशित
उदय प्रकाश	अबूतर–कबूतर	राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली– 110002
ए. अरविन्दाक्षन	समकालीन हिंदी कविता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पहला संस्करण : 1998 दूसरी आवृत्ति : 2010
ऋतुराज	अबेकस	संभावना प्रकाशन, हापुड़ – 2450101 प्रथम संस्करण :1982
केदारनाथ अग्रवाल	कहे केदार खरी–खरी	परमिल प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण : 1983
कात्यायनी	इस पौरुषपूर्ण समय में	वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली – 110002 प्रथम संस्करण – 1999
कात्यायनी	सात भाईयों के बीच चम्पा	परिकल्पना प्रकाशन, निरालानगर लखनऊ–226006 पहला संस्करण : 1994 तीसरा संस्करण : जनवरी 2008
गगन गिल	एक दिन लौटेगी लड़की	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली – 110002 प्रथम संस्करण : 1989 दूसरा संस्करण : 2001
गिरिधर राठी	निमित्त	राधाकृष्ण प्रकाशन

		दरियागंज, नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 1995
गोबिंद प्रसाद	अलाप और अंतरंग	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली– 110002 पहला संस्करण : 2011
गोबिन्द प्रसाद	कोई ऐसा शब्द हो	वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली – 110002 प्रथम संस्करण :
गोबिन्द प्रसाद	मैं नहीं था लिखते समय	भारतीय ज्ञानपीठ 18, लोदी रोड, नई दिल्ली – 110003 पहला संस्करण – 2007
निर्मला गर्ग	सफ़र के लिए रसद	मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा नई दिल्ली–110032 प्रथम सस्करण : 2007
नीलेश रघुवंशी	अंतिम पंक्ति में	किताबघर 24, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 2008
नीलेश रघुवंशी	पानी का स्वाद	किताबघर 24, दरियागंज नई दिल्ली–110002 सस्करण : 2004
परमानन्द श्रीवास्तव (सं.)	समकालीन हिंदी कविता	साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन फिरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली – 110002 पथम संस्करण : 1990 पुनर्मुद्रण : 2010
परमानन्द श्रीवास्तव (प्रधान सं.)	हिंदी भाषा और साहित्य समग्र अध्ययन	जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, बेर सराय नई दिल्ली – 110016 प्रथम संस्करण – 110016 पुनर्प्रकाशन : 2007 संशोधित संस्करण : 2010

बलदेव वंशी (सं.)	समकालीन कविता : विचार कविता	पराग प्रकाशन, शाहदरा नई दिल्ली–110032 प्रथम संस्करण : 1978
डॉ. भगीरथ मिश्र	नया काव्यशास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी – 221001 प्रथम बार : 1993 ई.
भागीरथ मिश्र	काव्यशास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी – 221001 चतुर्दश संस्करण : 2001
मंगलेश डबराल	आवाज़ भी एक जगह है	वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 2000
राजेश जोशी	दो पंक्तियों के बीच	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली–110002 पहला संस्करण : 2000
लीलाधर जगूड़ी	अनुभव के आकाश में चाँद	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली – 110002 प्रथम संस्करण : 1994
सं. लीलाधर मंडलोइ	कविता के सौ बरस	शिल्पायन प्रकाशन, गोरखपार्क शाहदरा, नई दिल्ली – 110032 प्रथम संस्करण : 2008
लीलाधर मंडलोई	काल बाँका तिरछा	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली– 110002 प्रथम संस्करण : 2004
विनय विश्वास	आज की कविता	राजकमल प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण : 2009
विष्णु नागर	कविता के साथ–साथ	मेधा बुक्स, शाहदरा दिल्ली–110032

संस्करण : 2004

सं वीरेन्द्र सिंह	समकालीन कविता	पंचशील प्रकाशन जयपुर
सुनीता जैन	बारिश में दिल्ली	मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा दिल्ली – 110032 प्रथम संस्करण 2007

सहायक पत्र एवं पत्रिकाएं

जनसत्ता, 17 जून 2001

हिंदुस्तान, 1 जुलाई 2001

इंडिया टुडे, मार्च 2002

कथादेश, जनवरी 2007

नया ज्ञानोदय फरवरी 2007

नई धारा जून –जुलाई 2008

सं. द्वारिकाप्रसाद चारुमित्र, अनभै साँचा, अक्टूबर–दिसंबर 2010

आउटलुक, जनवरी 2011

आजकल, मार्च 2011

सं. आनंदप्रकाश, युगपरिबोध, सितंबर 2011